ओ३म्

सत्यार्थ-संदेश

मासिक
जनवरी २०१२

यवनमतसमीक्षा

कृश्चीनमतसमीक्षा

नास्तिकमतसमीक्षा

आर्यावर्त्तदेशीयमतमतान्तर समीक्षा

आचारानाचारभक्ष्याभक्ष्य विषय

विद्याऽविद्याबन्धमोक्ष विषय

सृष्ट्युत्पत्त्यादि विषय

ईश्वरविषय

राजधर्मविषय

वानप्रस्थसंन्यासाश्रम

समावर्त्तनविषय

अध्ययनाध्यापन

बालशिक्षा

ईश्वरनामव्याख्या

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
नवलखा महल परिसर, गुलाब बाग, महर्षि दयानन्द मार्ग,
उदयपुर–313001 (राज.)

वर्ष - १ अंक - १ जनवरी २०१२

सृष्टि संवत् - १९६०८५३११२

विक्रम संवत् - २०६८

दयानन्दाब्द - १८८

संरक्षक

महाशय धर्मपाल जी (एम.डी.एच.)

डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल

डॉ. महावीर मीमांसक

आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय

डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री

डॉ.सोमदेव शास्त्री

डॉ. रघुवीर वेदालंकार

आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

संपादक

अशोक आर्य

सदस्यता

संरक्षक - ११००० रु.

आजीवन - १००० रु.

पंचवर्षीय - ४०० रु.

वार्षिक - १०० रु.

एक प्रति - १० रु.

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को विस्तृत करने के उद्देश्य से प्रारंभ की गयी, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए पठनीय और समर्पित मासिक पत्रिका सत्यार्थ सन्देश

अनुक्रमणिका

१. वेद सुधा
- महर्षि दयानन्द कृत भाष्य ०३

२. अध्यक्षीय
- महाशय धर्मपाल ०४

३. आत्म निवेदन
- अशोक आर्य ०५

४. महर्षि स्तुति
- आचार्य डॉ. धर्मवीर कुण्डु ०७

५. सत्यार्थ प्रकाश का परिचय
- स्व. दयाराम पोद्दार ०९

६. A Linguistic note on the Polynymic interpretation of the vedic language
- Dr. Mahavir Mimansak १३

७. नवलखा महल (सत्यार्थ प्रकाश भवन) एक परिचय १८

८. माँ का दूध शिशु के लिए अमृत है
- अशोक आर्य १९

९. दृष्टिकोण
- साधना सुनील विवेरकर २२

९. सैषा त्रय्येव विद्या तपति
- आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय २४

१०. आओ स्मरण करें
- पंजाब केसरी लाला लाजपतराय ३०

११. किंवदन्तियों का रहस्य
- उपेन्द्रनाथ राय ३२

सत्यार्थ संदेश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

प्रकाशक

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास

नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर (राजस्थान) ३१३००१

(०२९४) २४१७६९४ , ९३१४५३५३७६, ९८२८९२६७४७

www.satyarthprakashnyas.org, E-mail : satyarthsandesh@gmail-com,

वर्ष - १ अंक - १ जनवरी २०१२

सृष्टि संवत् - १९६०८५३११२
विक्रम संवत् - २०६८
दयानन्दाब्द - १८८

सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को विस्तृत करने के उद्देश्य से प्रारंभ की गयी, सम्पूर्ण परिवार के लिए, हर आयु समूह के लिए पठनीय और समर्पित मासिक पत्रिका सत्यार्थ सन्देश

प्रमुख संरक्षक - सत्यार्थ-सन्देश

महाशय धर्मपाल जी (एम.डी.एच.)
डॉ. सुखदेव चन्द सोनी (अमेरिका)

परामर्शदाता संपादक मण्डल

डॉ. महावीर मीमांसक
आचार्य वेदप्रकाश श्रोत्रिय
डॉ. ज्वलंत कुमार शास्त्री
डॉ.सोमदेव शास्त्री
डॉ. रघुवीर वेदालंकार
आचार्य वेदप्रिय शास्त्री

संपादक

अशोक आर्य

सदस्यता- भारत -विदेश

संरक्षक	११००० रु.	$ 1000
आजीवन	१००० रु.	$ 250
पंचवर्षीय	४०० रु.	$ 100
वार्षिक	१०० रु.	$ 25
एक प्रति	१० रु.	$ 5

अनुक्रमणिका

१. वेद सुधा - महर्षि दयानन्द कृत भाष्य		०४
२. अध्यक्षीय - महाशय धर्मपाल		०५
३. आत्म निवेदन - अशोक आर्य		०६
४. महर्षि स्तुति - आचार्य डॉ. धर्मवीर कुण्डू		०८
५. सत्यार्थ प्रकाश का परिचय - स्व. दयाराम पोद्दार		१०
६. A Linguistic note on the Polynymic interpretation of the vedic language - Dr. Mahavir Mimansak		१३
७. माँ का दूध शिशु के लिए अमृत है - अशोक आर्य		१६
८. दृष्टिकोण - साधना सुनील विवरेकर		१९
९. सैषा त्रय्येव विद्या तपति - आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय		२०
१०. आओ स्मरण करें - पंजाब केसरी लाला लाजपतराय		२४
११. किंवदन्तियों का रहस्य - उपेन्द्रनाथ राय		२६

भुगतान राशि धनादेश/चैक/ड्राफ्ट
श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास
के पक्ष में बना न्यास के पते पर भेजें।
अथवा यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, उदयपुर
खाता संख्या : ३११०१०२०१००४१५१८
में जमा करा अवश्य सूचित करें।

विज्ञापन शुल्क (प्रति अंक)

कवर -४ (बाहरी आवरण) रंगीन	५००० रु.
कवर -३ (भीतरी आवरण) रंगीन	३५०० रु.
अन्दर पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	
पूरा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	२००० रु.
आधा पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	१००० रु.
चौथाई पृष्ठ (श्वेत-श्याम)	७५० रु.

सत्यार्थ संदेश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र उदयपुर ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

स्वामी एवं प्रकाशक "श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास" उदयपुर मुद्रक : चौधरी ऑफसेट, (प्रा.लि.), उदयपुर

प्रकाशक

श्रीमद्दयानन्द सत्यार्थप्रकाश न्यास
नवलखा महल, गुलाब बाग, उदयपुर (राजस्थान) ३१३००१
(०२९४) २४१७६९४ , ९३१४५३५३७९, ९८२८९२६७४७

वेद सुधा

भूरसीत्यस्य त्रिशिरा ऋषिः। अग्निर्देवता। प्रस्तारपङ्क्तिश्छन्दः। पञ्चमः स्वरः।।

भूर॑सि भूमि॑र॒स्यदि॑तिरसि वि॒श्वधा॑या॒ विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य ध॒र्त्री।
पृथि॒वीं य॑च्छ पृथि॒वीं दृ॑ꣳह पृथि॒वीं मा हि॑ꣳसीः।।यजु.१३/१८।।

पदार्थ- हे रानी! जिससे तू (भूः) भूमि के समान (असि) है इस कारण (पृथिवीम्) पृथिवी को (यच्छ) निरन्तर ग्रहण कर जिसलिए तू (विश्वधायाः) सब गृहाश्रम के और राजसम्बन्धी व्यवहारों और (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) राज्य को (धर्त्री) धारण करनेहारी (भूमिः) पृथिवी के समान (असि) है इसलिए (पृथिवीम्) पृथिवी को (दृहं) बढ़ा और जिस कारण तू (अदितिः) अखण्ड ऐश्वर्यवाले आकाश के समान क्षोभरहित (असि) है इसलिए (पृथिवीम्) भूमि को (मा) मत (हिंसीः) बिगाड़।।१८।।

भावार्थ - जो राजकुल की स्त्री पृथिवी आदि के समान धीरज आदि गुणों से युक्त हो तो वे ही राज्य करने के योग्य होती है।।१८।।

तं यज्ञमित्यस्य नारायण ऋषिः। पुरुषो देवता। निचृदनुष्टुप्छन्दः। गान्धारः स्वरः।।

तं य॒ज्ञं ब॒र्हिषि॒ प्रौक्ष॒न् पुरु॑षं जा॒तम॑ग्र॒तः।
तेन॑ दे॒वाऽअ॑यजन्त सा॒ध्याऽऋष॑यश्च॒ ये।। यजु. ३१/ ९।।

पदार्थ- हे मनुष्यो! (ये) जो (देवाः) विद्वान् (च) और (साध्याः) योगाभ्यास आदि साधन करते हुए (ऋषयः) मन्त्रार्थ जानने वाले ज्ञानी लोग जिस (अग्रतः) सृष्टि से पूर्व (जातम्) प्रसिद्ध हुए (यज्ञम्) सम्यक् पूजने योग्य (पुरुषम्) पूर्ण परमात्मा को (बर्हिषि) मानस ज्ञान यज्ञ में (प्र,औक्षन्) सींचते अर्थात् धारण करते हैं, वे ही (तेन) उसके उपदेश किये हुए वेद से और (अयजन्त) उसका पूजन करते हैं (तम्) उसको तुम लोग भी जानो।।९।।

भावार्थ - विद्वान् मनुष्यों को चाहिए कि सृष्टिकर्त्ता ईश्वर का योगाभ्यासादि से सदा हृदयरूप अवकाश में ध्यान और पूजन किया करें।।९।।

शुभासनम्

- डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्री

नव्यं पत्रं ह्युदयपुरतो यन्तु प्राकाश्यमेति, सन्देशं यत् मुनिजनवृतं सर्वदा दातुकामम्।
आर्याणां तद् विमलहृदये स्थानमिच्छद् वरेण्यम्, अज्ञानाऽन्धं क्षपयतु सदा हार्दिकी कामना नः।।
मासे मासे नियतसमये सत्यसन्देशमिष्टम्, दायं दायं शमयतु मुदा सर्वथा यस्त्वनिष्टम्।
राजस्थानादुदयपुरतो नित्यमावर्त्तमानम्, पत्रं चेदं दिशतु नितरां भारते सत्यमार्गम्।।
दिव्यं महर्षेस्तपसः स्थलं यत्, पवित्र-सत्यार्थ-प्रकाश-भूमिः।
समुत्थितस्तत्र विचार-सूर्यः, समग्र लोकं विमली करोतु।।
मूढात्मनां यो हृदये समन्तात्, अज्ञानिनां शूल इवास्ति विद्धः।
वेदाश्रिते वर्त्मनि सन्निवेष्टुम्, सामान्य-लोकं सततं प्रवृद्धः।।
श्रुति-स्मृतीनां सुपथे समृद्धः, महर्षि-मान्याऽभिमतेषु सिद्धः।
स्वान्ते सतां यःसुतरां समिद्धः, 'सत्यार्थ-संदेश' इति प्रसिद्धः।।

(संस्कृत के प्रख्यात कवि व्यंग्यकार एवं कथा लेखक)
साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत
अध्यक्ष- संस्कृत विभाग, फीरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली

अध्यक्षीय

जीवन में सफल बनना प्रत्येक मनुष्य की चाह होती है। हर व्यक्ति चाहता है कि उसे सब जानें, पसन्द करें। और जीवन में वह सुख प्राप्त करे।

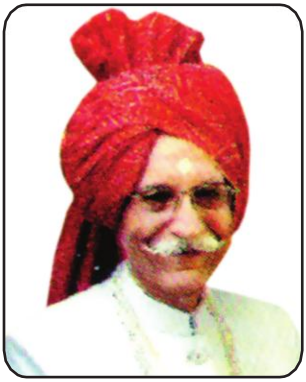

यह ठीक है कि प्रत्येक मनुष्य का प्रारब्ध उसके निर्माण में, अहम् भूमिका रखता है। योनि व सुख सुविधा सम्पन्न परिवेश, धार्मिक माता-पिता, का निर्णय परमपिता परमात्मा द्वारा उसके कृत कर्मों के आधार पर किया जाता है।

यहाँ युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती का निष्कर्ष ध्यान रखना चाहिये कि पुरुषार्थ प्रारब्ध से बड़ा होता है क्योंकि पुरुषार्थ से ही प्रारब्ध का निर्माण होता है।

अतः यदि आप सफलता चाहते हो तो उसका मूल मंत्र यही है कि अपने आज के प्रत्येक कार्य को परमार्थ हित-चिन्तन के साथ करो। समष्टि का कल्याण वैदिक संस्कृति का केन्द्रीय बिन्दु है। अपना कल्याण भी इसी में समाहित है। अगर आपने प्रभु कृपा से किसी भी क्षमता का अर्जन किया है तो निष्काम भाव से प्रभु की प्रजा की सेवा में वितरित कर दो।

यदि आप विद्वान् हैं तो अविद्या को दूर कर विद्या का प्रसार अपना कर्तव्य जानो। यदि प्रभु कृपा से धनवान हैं तो जब तक स्व-उपभोग के पश्चात् मानवता के कल्याणार्थ उसका उपयोग न किया तो न तो मनुष्य जीवन प्राप्त करना सार्थक होगा और न ही भविष्य के लिए प्रारब्ध निर्मित हो सकेगा। अत्यन्त सरल शब्दों में कहें तो सेवा ऐसी ही है कि जैसे बैंक में धन डाल देना। बैंक में धन न डालेंगे तो भविष्य में (अर्थात् प्रारब्ध रूप में) धन, बल, विद्या क्यों कर प्राप्त हो सकेगी?

महर्षि दयानन्द सरस्वती को क्या प्राप्य नहीं था। मोक्ष-सुख के वे अधिकारी थे। पर भारत की दीन हीन अवस्था को देख उस परम सुख को त्याग जनता जनार्दन की सेवा में लग गये। यही आदर्श है। यही धर्म है। यही सफलता का मूल मन्त्र है।

महर्षि दयानन्द ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में मानव मानव कैसे बन सके इसे निरूपित किया है। इस महान् ग्रन्थ की शिक्षाओं को जन-जन तक पहुँचाने हेतु ग्रन्थ के रचना स्थल से न्यास 'सत्यार्थ-सन्देश' पत्रिका निकाल रहा है। यह बहुत आवश्यक व कल्याणकारी कार्य है। न्यास की गतिविधियों की सूचना भी आप सब तक पहुँच सकेंगी।

प्रत्येक वैदिक संस्कृति प्रेमी से प्रत्येक आर्य समाज/संस्था से मेरा अनुरोध है कि वे स्व श्रद्धानुसार इस पत्रिका के सदस्य बन सहयोग दें ताकि यह आकार, प्रकार, गुणवत्ता में अहर्निश उन्नति कर, पाठकों के मध्य, उनके परिवार में सद्-विचारों का सम्प्रेषण कर सके।

शुभाकांक्षी
महाशय धर्मपाल
अध्यक्ष-न्यास

सत्यार्थ सन्देश के प्रति हृदयोद्गार

– आर.एन. पाठक 'तन्मय'

'सत्यार्थ प्रकाश' के बाद अब हो गई 'सत्यार्थ-सन्देश' की पहल।
इससे हम आर्यों का जीवन, हो जावेगा और सहज।।
हो जावेगा और सहज सत्य अर्थ सहित संदेश जावेगा।
प्रान्त देश विदेशों तक, वह सत्य का अर्थ पहुँचावेगा।।
कहें 'पाठक' इक बात, जिसे मिले जन जन का सहयोग।
आर्यों की संस्कृति को समर्पित, होगा इसका पूरा उपयोग।।

धर्मरत्न, ६ए कल्याणपुरी, रामनगर,
सोडाला, जयपुर

आत्म निवेदन

न्यास के मुखपत्र 'सत्यार्थ सन्देश' के प्रवेशांक को प्रस्तुत करते हुए जिस प्रसन्नता की अनुभूति हमें हो रही है, उसका वर्णन शब्दों में नहीं कर सकते, कारण कि सुधी आर्यजनों की लंबे समय से प्रतीक्षित अभिलाषा की पूर्ति के साथ-साथ यह कार्य न्यास के संस्थापक अध्यक्ष (स्मृति शेष) स्वामी तत्त्वबोध सरस्वती के उन स्वप्नों में से है जिसे वह फलित होते देखना चाहते थे। कारणवश यह कार्य पूर्व में संभव नहीं हो सका। अनेक आर्य विद्वान् विगत कई वर्षों से प्रेरणा कर रहे थे कि न्यास का अपना मुख-पत्र होना चाहिए। सो इस सब के परिणामस्वरूप यह प्रवेशांक आपके हाथ में है। अब इसे पुष्पित-पल्लवित करना आपके हाथों में है।

न्यास का विचार है कि एक ओर यह पत्रिका सत्यार्थ प्रकाश व वैदिक शिक्षाओं के मोतियों से सुगुम्फित हो, प्रौढ़ शास्त्रीय विवेचन इसकी शोभाश्री में अभिवृद्धि कर विद्वज्जनों में इसे प्रतिष्ठित स्थान दिलाएं तो दूसरी ओर सामान्य पाठकों के लिए, महिलाओं व बच्चों के लिए पठनीय सामग्री इसे सम्पूर्ण पारिवारिक पत्रिका के रूप में स्थापित करे।

पाठ्य सामग्री ही किसी पत्रिका की शान होती है। विद्वानों के लेख ही इसे गरिमा प्रदान करते हैं। बड़े हर्ष की बात है कि आर्य जगत् के सुविख्यात विद्वान् सर्वश्री डा. महावीर मीमांसक, आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय, डा. ज्वलंत कुमार शास्त्री, डा. सोम देव शास्त्री, डा. रघुवीर वेदालंकार व पं. वेदप्रिय शास्त्री ने परामर्शदाता संपादक मंडल में सम्मिलित होने की कृपापूर्ण स्वीकृति प्रदान कर इस पत्रिका में प्रकाशित होने वाली सामग्री की उत्कृष्टता को सुनिश्चित कर दिया है।

सत्यार्थ प्रकाश महर्षि दयानन्द के क्रांतिकारी व युग परिवर्तन में सक्षम विचारों का कोष है। हमारे स्मृति-पटल पर ऐसी अनेकानेक घटनाएँ उभर रहीं हैं जब इस महान् ग्रन्थ ने अनेकों के जीवन में आमूलचूल परिवर्तन करके उन्हें राष्ट्र-नायक बना दिया। स्वामी श्रद्धानन्द जी का जीवन इसका प्रबल प्रमाण है। नेपाल के पंडित शुक्रराज में इसी अद्भुत चमत्कारिक ग्रन्थ ने उस आध्यात्मिक ऊर्जा व दृढ़ आत्मबल का संचरण किया कि उन्होंने सिद्धांतों की रक्षार्थ हँसते हँसते अपने प्राण न्यौछावर कर दिए पर राजशाही के समक्ष झुकना स्वीकार नहीं किया। ऐसे महिमामयी महात्माओं की गाथा भी इस पत्रिका का उद्देश्य होगा।

हम स्पष्ट देख सकते हैं कि महर्षि ने मनुष्य के व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक व राष्ट्रीय जीवन को समस्त दुरितों से पृथक् कर उदात्त मानवीय मूल्यों से आप्लावित करने के जो सूत्र सत्यार्थ प्रकाश में दिए, उन पर देश की जनता चल पड़ी है, भले ही इसका श्रेय महर्षिवर को नहीं दिया जा रहा हो।

सत्यार्थ प्रकाश के रूप में देव दयानन्द इस राष्ट्र की समस्याओं का सम्पूर्ण निदान व उपचार लेके आये थे यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी। कुँवर सुखलाल 'आर्य मुसाफिर' ने ठीक ही लिखा था कि 'गरज कोई माने न माने मुसाफिर दयानन्द दर्दे वतन की दवा थे।'

आज से १२५ वर्ष पूर्व, अत्यंत प्रतिकूल वातावरण में महर्षि दयानन्द ने प्रत्येक बालक-बालिका के लिए अनिवार्य शिक्षा की बात इस ग्रन्थ में लिखी थी। आज सरकार ने शिक्षा को मौलिक अधिकार मानते हुए ६ से १४ वर्ष के बालक बालिकाओं के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा का प्रावधान कर दिया है। क्या यह दयानन्द के विचारों की दिग्विजय नहीं है?

१९ वीं शताब्दी में जब नारी का अक्षरज्ञान प्राप्त करना भी दिवास्वप्न था, हमारा चरित्र नायक वेद व अन्य धर्मशास्त्रों, भारत के इतिहास और प्राकृतिक न्याय की साक्षी देकर स्त्रियों को समान अधिकार प्रदान करता है। आज उस वैचारिक अंकुरण का प्रतिफल प्रत्यक्ष दिखायी दे रहा है।

क्रान्ति का अग्रदूत यह दिव्य ग्रन्थ भारत के पतन के मूल कारणों का निदान कर धर्म को चौके-चूल्हे के बंधनों व व्यर्थ के बाह्य आडम्बरों से मुक्त कर मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल देता है।

परन्तु यह संतुष्ट होकर निष्क्रिय हो जाने का समय नही है। आज हमारे सामने भ्रष्टाचार, आतंकवाद, अश्लीलता का जो ताण्डव हो रहा है, आपाततः तो उसकी जड़ व्यवस्था में दिखायी देती है, जो केवल आंशिक सत्य है, वस्तुतः तो सर्वत्र मानवीय मूल्यों का पतन व कोरी भौतिकता की चमक दमक के मोह में घिरा मनुष्य इसके मूल में है। वह रातों रात सब कुछ पा जाना चाहता है, चाहे इसके लिए उसे कुछ भी कीमत क्यों न चुकानी पड़े। मंत्री से लेकर संतरी तक कोई इसका अपवाद नहीं है। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के षष्ठ समुल्लास में शासक से जिस

चारित्रिक उच्चता की अपेक्षा की थी, वोटों की राजनीति के चलते उसका महत्व नहीं समझा जा रहा। यही कारण है कि करोड़ों–अरबों के घोटाले इस वर्ग के लोगों द्वारा ही किये गए हैं। राजा मूक दर्शक है क्योंकि उसकी कुर्सी इस मौन का ही प्रतिफल है। तथाकथित सामंतों की ऐसी–ऐसी करतूतें सामने आ रहीं हैं, कि शर्म को भी शर्म आ जाए। ये लोग जनता को क्या न्याय देंगे? ये अपने प्रभाव से ऐसे रास्ते निकाल लेते हैं कि दण्ड–विधान को निष्प्रभावी कर देते हैं। समुचित दण्ड का अभाव अपराध प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। ऐसे संदर्भों में सत्यार्थ प्रकाश का छठा समुल्लास प्रकाश स्तम्भ स्वरूप है।

नए–नए पाखंडों का उपचार करने के लिए भी सत्यार्थ प्रकाश रूपी औषध की महती आवश्यकता है।

यह पत्र सत्यार्थ–शिक्षाओं को व उसके माध्यम से वैदिक संस्कृति के सत्य स्वरूप के उद्घाटन को समर्पित होगा और यह सब आप विद्वद्जनों और सुधी पाठकों के सहयोग से ही संभव होगा।

मकर सौर संक्रांति के पावन पर्व पर इस पत्रिका का लोकार्पण हो रहा है, जो नस–नस में आशा का संचार कर देने वाला पर्व है, कल तक अंधकार प्रधान था, पर अब प्रकाश की तीव्रता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' का उद्घोष कर समस्त निराशा को छिटककर, हम सब अपने कर्त्तव्य कर्म में लग जावें तो लक्ष्य प्राप्य है, इसमे भी संदेह नहीं।

हमें आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि आपके प्यार, दुलार, स्नेह से सिंचित 'सत्यार्थ सन्देश' आर्य जगत् में अपने लिए प्रतिष्ठित स्थान बनाएगा। प्रत्येक आर्य, प्रत्येक आर्य–संस्था पत्रिका की सदस्य बन, पत्रिका की दीर्घायु सुनिश्चित करेंगे ऐसी आशा ही नहीं, पूर्ण विश्वास है।

नवलखा महल
(सत्यार्थ प्रकाश भवन)

यह भवन है, विश्वविख्यात् पर्यटन स्थल, झीलों की नगरी, उदयपुर के हृदय स्थल में अवस्थित गुलाब बाग में, युग प्रवर्तक महर्षि दयानन्द की स्मृति को संजोए, पवित्र आकर्षक स्मारक, नवलखा महल। जहाँ मेवाड़ नरेश महाराणा सज्जनसिंह जी के निमंत्रण पर लगभग साढ़े छः मास विराजकर महर्षि दयानन्द सरस्वती ने कालजयी ग्रन्थ रत्न सत्यार्थ प्रकाश का प्रणयन सम्पूर्ण किया। जिसे श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास ने भव्यतम आकर्षक रूप प्रदान कर वैदिक धर्म (भारतीय संस्कृति) के प्रचार का अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र बनाने का प्रयास किया है।

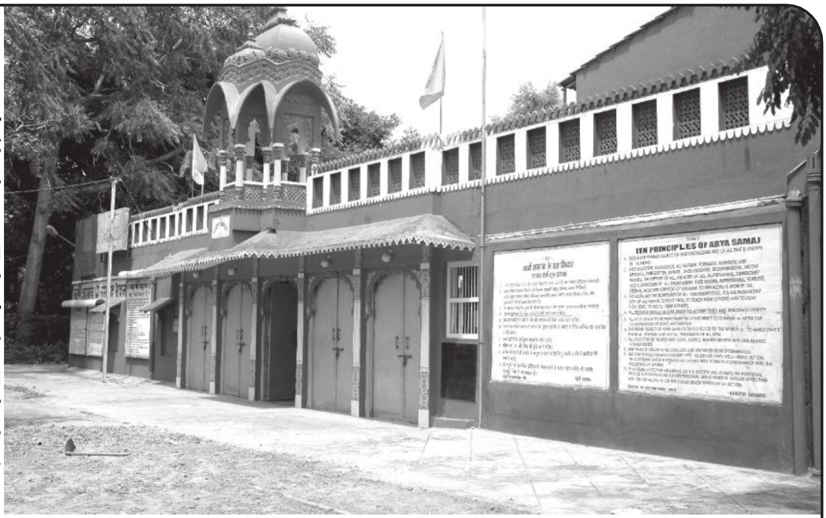

प्रमुख आकर्षणः–

१. समृद्ध पुस्तकालय एवं वाचनालय।
२. सत्यार्थ प्रकाश रचनाकक्ष।
३. प्रभु भक्ति व महर्षि महिमा के गीतों की धुनों पर थिरकते व रंगीन आभा बिखेरते रंगीन फव्वारे।
४. भव्य यज्ञशाला जिसके प्रांगण में एक साथ ५०० व्यक्ति बैठ सकते हैं।
५. ६४ सुन्दर तैल चित्रों से युक्त,महर्षि के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर प्रकाश डालती भव्य दीर्घदीर्घा।
६. जीर्ण–शीर्ण नवलखा महल को वर्तमान स्वरूप प्रदान करके सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले,९० लाख रुपये न्यास को दान करने वाले (स्मृति शेष) पूज्य स्वामी तत्त्वबोध सरस्वती,अध्यक्ष न्यास (पूर्व नाम श्री हनुमान प्रसाद चौधरी) की साधना स्थली–साधना सदन।
७. ऋषि–दर्शन मंत्रमुग्ध कर देने वाला दृश्य–श्रव्य कार्यक्रम (समय ११ से ५ बजे)।
८. घूमती रैक्स में सत्यार्थ प्रकाश के सभी २३ भाषाओं में उपलब्ध अनुवादों की प्रदर्शिनी।
९. महाशय धर्मपाल जी के अनुदान से निर्मित भव्य वातानुकूलित मल्टी मीडिया माता लीलावन्ती सभागार।
१०. वेबसाइट (www.satyarthprakashnyas.org) के माध्यम से विश्वभर में ऋषि जीवन तथा सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को पहुँचाना।

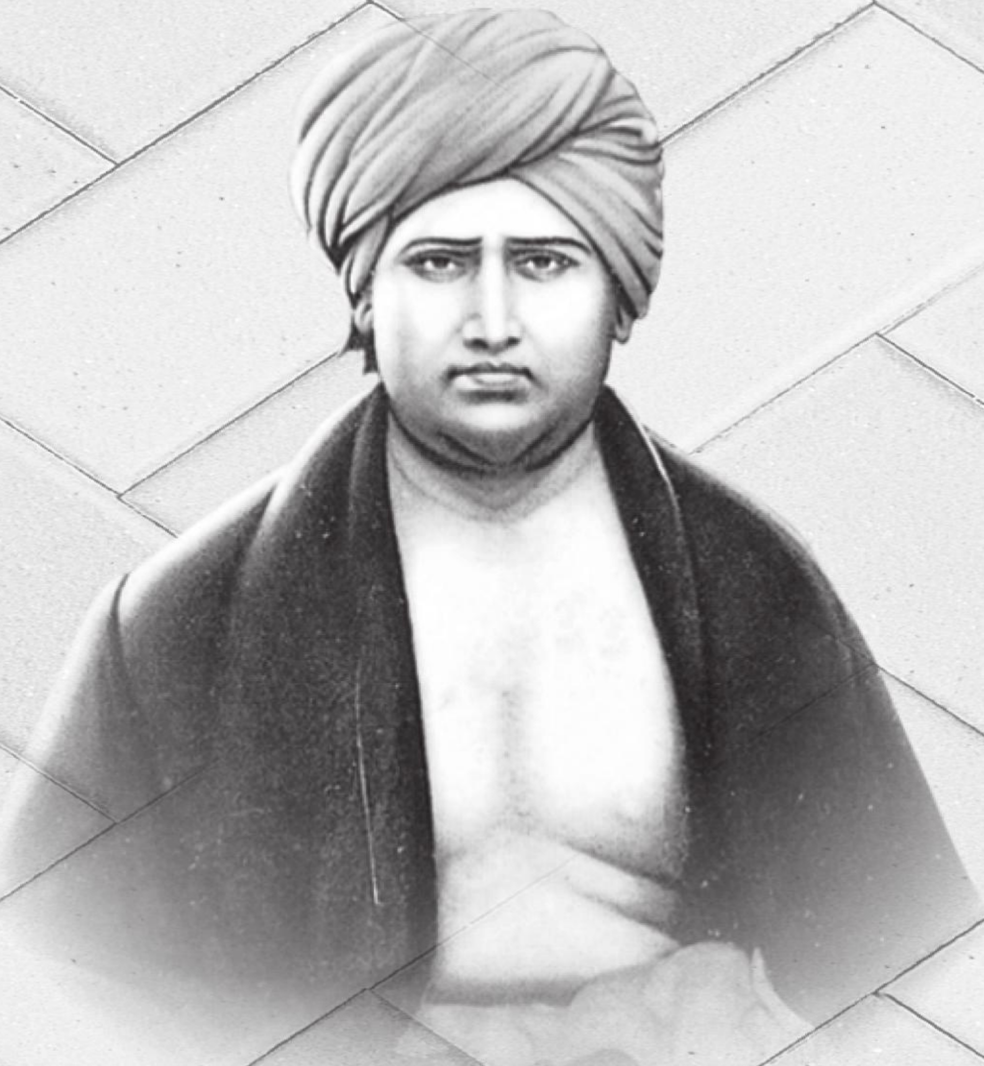

महर्षि स्तुति

– आचार्य डॉ. धर्मवीर कुण्डू

सुलभाः पुरुषा लोके भवन्त्येकगुणान्विता। परं सर्वगुणोपेता भवन्ति विरला जना।।१।।

इस संसार में एकगुणी व्यक्ति सरलता से मिल जाते हैं, किन्तु सर्वगुणसंपन्न व्यक्ति बहुत कम दिखाई देते हैं।।१।।

यद्यप्यस्ति प्रभुरेकः सर्वगुणसमन्वितः। दयानन्दः परं पुन्सुः रविवद्राजते हि खे।।२।।

यद्यपि सकल संसार में केवल एक ईश्वर ही सर्वगुणसंपन्न शक्ति है, किन्तु मानवों में महर्षि दयानन्द सरस्वती आकाश में सूर्य की भाँति अपने विभिन्न गुणों से सुशोभित हैं।।२।।

यथा कोऽपि प्रभुर्भक्तरस्ति परं निरक्षरः। अस्ति विद्वान् परं नास्ति यतो लोकसुधारकः।।३।।

जैसे कोई व्यक्ति ईश्वरभक्त है, किन्तु वह विद्वान् नहीं। यदि विद्वान् है तो वह समाज सुधारक नहीं, क्योंकि बहुत से भक्त एवं सन्त परोपकारी होते हुए भी विद्वान् नहीं थे।।३।।

अस्ति सुधारकश्चेद्धि नास्तीह विशालचेतसः। उदारमानवश्चेत्तु ब्रह्मचारी सुदुर्लभः।।४।।

यदि कोई व्यक्ति समाजसुधारक है तो वह उदार हृदय नहीं, यदि वह उदार हृदय है तो ब्रह्मचारी नहीं।।४।।

सदाचारी भवेत्तर्हि नास्ति सः परिव्राडसौ। संन्यासी विद्यते कोऽपि नास्ति वाचि विचक्षणः।।५।।

यदि वह ब्रह्मचारी है तो विरागी एवं संन्यासी नहीं, यदि संन्यासी भी है तो उत्तम उपदेशक नहीं।।५।।

अस्त्युत्तमः प्रवक्ताश्चेन्नासौ सुलेखकः क्वचित्। यदि सो लेखकोऽप्यस्ति नास्ति शीलगुणैर्युतः।।६।।

यदि एकाध उत्तम वक्ता भी है तो वह उत्तम कवि नहीं, यदि उत्तम कवि है तो वह सज्जनोचित स्वभाव से संयुक्त नहीं।।६।।

यद्यस्ति शीलसम्पन्नो नास्ति परोपकारकः। उपकारी भवेत् कोऽपि नासौ कर्मसुकौशलम्।।७।।

यदि कोई शीलवान् है तो परोपकारी नहीं, यदि परोपकारी भी मिल जाय तो वह कार्यकुशल नहीं।।७।।

कर्मणि कुशलश्चेद्धि नास्ति त्यागी जनरसौ। यद्यस्ति त्यागसम्पन्नः तन्नेह राष्ट्रवत्सलः।।८।।

यदि कोई व्यक्ति कार्य में कुशल है तो वह वैराग्य गुण से संपन्न नहीं, यदि वैरागी भी है तो वह देशभक्त नहीं।।८।।

देशभक्तेऽपि संजाते ज्ञानभक्तो न विद्यते। निष्णाते ज्ञानविज्ञाने नास्ति परं महाशय।।९।।

यदि एकाध देशभक्त भी मिल जाए तो वह वेदों का विद्वान् नहीं, यदि वेदों का विद्वान् भी है तो वह महान् आशयवाला नहीं।।९।।

यद्युदारजनः कोऽपि शुद्धाहारी न वर्तते। शुद्धाहारी भवेच्चेद्धि परं नास्ति महारथी।।१०।।

यदि कोई व्यक्ति उदार दिल है तो वह शुद्ध, सात्त्विक तथा मिताहारी नहीं है, यदि शुद्धाहारी है तो वह रणकुशल नहीं।।१०।।

महारथी भवेत्कोऽपि नास्ति सौम्यः स्वभावकः। अनृजु मानवश्चेद्धि नास्ति मनोहरो जनः।।११।।

यदि कोई रणवीर है तो वह साधु (सौम्य) स्वभाव का नहीं। यदि साधु स्वभाव का भी मिल जाता है तो वह शरीर सौष्ठव में अनुपम नहीं।।११।।

चारुगुणेयुते चापि दृश्यते न बली क्वचित्। यद्यस्ति बलवान् कोऽपि न भवति दयालु सः।।१२।।

यदि कोई शारीरिक शोभासंपन्न है तो वह शारीरिक बल से संपन्न नहीं, यदि बलवान् है तो वह दयालु नहीं।।१२।।

दयालु पुरुषो लोके दृश्यते न जितेन्द्रियः। दमबलेऽपि संजाते भवति न चिकित्सकः।।१३।।

यदि कोई दयालु है तो वह जितेन्द्रिय नहीं, यदि एकाध जितेन्द्रिय भी है तो वह कुशल चिकित्सक नहीं।।१३।।

परं यदि भवन्तश्चेद् द्रष्टुमिच्छन्त्यिमान् गुणान्। दयानन्दे हि देवर्षौ द्रष्टुमर्हत्यसंशयः।।१४।।

हे पाठको! यदि आप उपरोक्त गुण एक ही व्यक्ति में देखना चाहते हैं तो निश्चित ही आर्यसमाज के संस्थापक, दीनवत्सल, वेदों के रक्षक एवं दयामूर्ति दयानन्द में देख सकते हो।।१४।।

– ग्राम टिटौली, (रोहतक)

- अधिकारी वर्ग से विशेष निवेदन–कृपया अपनी संस्था को 'सत्यार्थ–संदेश' का सदस्य अवश्य बनावें।
- विद्वानों से निवेदन है कि वे केवल सत्यार्थ–संदेश के लिये लिखे गये अपने संक्षिप्त, सारगर्भित लेख प्रेषित करने की कृपा करें।

सत्यार्थ प्रकाश का परिचय

लेखक : (स्व.) दयाराम पोद्दार
झारखण्ड राज्य आर्य प्रतिनिधि सभा, रांची

कतिपय महापुरुषों का जीवनकाल अल्प वर्षों का होता है, पर वे अपने अल्प जीवन में मानवता के कल्याण के लिए जो कार्य कर जाते हैं उससे उनकी कीर्ति अनन्त काल तक विद्यमान रहती है। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती का जीवन भी अल्पजीवी (१८२४-१८८३) था। वे केवल ५९ वर्षों तक जीवित रहे। वे जन्मना गुजराती भाषी थे। उनकी बोलचाल और कार्य की भाषा प्रारम्भ में संस्कृत थी। सन् १८७२-७३ में अपनी कलकत्ता यात्रा के दौरान तत्कालीन ब्रह्म समाज के नेता बाबू केशवचन्द्र के अनुरोध पर उन्होंने शेष जीवन में अपना समस्त प्रचार व लेखन कार्य केवल जन जन की भाषा हिन्दी में किया। उन्होंने हिन्दी में वेदभाष्य के अतिरिक्त सत्यार्थ प्रकाश का प्रणयन किया, जो उनकी सबसे महत्वपूर्ण रचना समझी जाती है।

आचार्य चतुरसेन शास्त्री के शब्दों में 'संभवतः गोस्वामी तुलसीदास के द्वारा रचित श्रीरामचरित मानस के पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश हिन्दी भाषा का सबसे लोकप्रिय ग्रन्थ है।' एक अन्य लेखक के शब्दों में 'कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित 'दास कैपिटल' की तरह सत्यार्थ प्रकाश ने भी सर्वसाधारण जनता से लेकर विद्वानों को भी अपने महत्वपूर्ण विचारों से सदैव आन्दोलित किया है।' सत्यार्थ प्रकाश स्वामी दयानन्द की प्रथम कृति नहीं थी। सत्यार्थ प्रकाश के लेखन के पूर्व सन् १८६३,१८६६ व १८७० ईस्वी में उन्होंने क्रमशः सन्ध्या, भागवत- खण्डन, अद्वैतमत-खण्डन और १८७४ ईस्वी के पूर्व गर्दभतापिनी-उपनिषद् पुस्तिकाएं लिखकर प्रकाशित की थीं। सत्यार्थ प्रकाश उनकी महत्वपूर्ण कृति होने के साथ साथ हिन्दी गद्य के प्रारम्भिक काल का ग्रन्थ है। सत्यार्थ प्रकाश को कतिपय लोग आर्य समाज की बाइबिल कहने की भूल कर बैठते हैं,जबकि वस्तुस्थिति इसके सर्वथा विपरीत है। आर्य समाजियों के लिए वेद ही एकमात्र स्वतः प्रमाण है। सत्यार्थ प्रकाश सहित स्वामी दयानन्द द्वारा रचित अन्य ग्रन्थों में भी यदि कोई वेदानुकूल नहीं है तो वे परतः प्रमाण की कोटि में आती हैं। वस्तुतः आर्य समाज और सत्यार्थ प्रकाश वेद पर ही पूर्णतः अवलम्बित हैं।

सत्यार्थ प्रकाश की रचना स्वामी दयानन्द ने अपने एक भक्त व प्रशंसक राजा जयकृष्ण दास के अनुरोध पर की थी, जो उन दिनों बनारस के डिप्टी कलक्टर थे। राजाजी का स्वामी दयानन्द जी से आग्रह था कि वे अपने विचारों को लिखित रूप से दें ताकि जो लोग उनके भाषणों में सम्मिलित न हो सकते थे वे भी उनके विचारों को जानकर उनसे लाभान्वित हो सकें। राजा जयकृष्ण दास ने उनके लेखन में सहायता करने के लिए एक वैतनिक महाराष्ट्रियन ब्राह्मण पंडित चन्द्रशेखर की सेवा भी स्वामी जी के जिम्मे कर दी थी। इस प्रकार उनके सत्यार्थ प्रकाश का लेखन १२ जून १८७४ से प्रारम्भ होकर सितम्बर १८७४ में (लगभग साढ़े तीन महीने में) समाप्त हुआ। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण के प्रकाशक राजा जय कृष्णदास थे। जिन्होंने इसे अपने व्यय व रचनाधिकार से सन् १८७४ ई. में वाराणसी से प्रकाशित किया था। स्वामी दयानन्द ने प्रचार कार्य की व्यस्तता के कारण प्रकाशन के पूर्व सत्यार्थ प्रकाश का प्रूफ भी नहीं देखा था। अतः स्वामी दयानन्द की भलमनसाहत का लाभ उठाकर प्रकाशक और लेखक ने अपनी धूर्तता से स्वामी दयानन्द की मान्यताओं और विचारों के प्रतिकूल विचारों का भी समावेश सत्यार्थ प्रकाश में कर दिया था। जैसे मृतक श्राद्ध, पशु-हिंसा व मांसभक्षण और सूर्यग्रहण पर नदी में स्नान करना इत्यादि। साथ ही सत्यार्थ प्रकाश के चौदह अध्यायों में से दो अध्याय, जो ईसाई और इस्लाम मत की समालोचना से संबंध रखते थे, उन्हें भी जानबूझकर प्रकाशक ने प्रकाशित नहीं किया था। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में उपर्युक्त आक्षेपयोग्य बातों की जानकारी जब स्वामी दयानन्द को अपने एक श्रोता के द्वारा हुई तो उन्होंने तत्काल एक विज्ञापन प्रकाशित कराकर अपनी मान्यताओं का स्पष्टीकरण कर दिया था। (तथा द्वितीय संस्करण के रूप में सत्यार्थ प्रकाश के पुनर्लेखन व प्रकाशन का उद्योग किया) इसी कारण से आर्य समाज सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को ही मान्यता प्रदान करता है, प्रथम संस्करण को नहीं।

सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण का कई दृष्टिकोणों से अधिक महत्व है। इसमें स्वामी दयानन्द के

कतिपय प्रगतिशील आर्थिक विचार और सूक्तियाँ उपलब्ध हैं, जो किसी कारणवश द्वितीय संस्करण में पुनः नहीं छप पाये। सत्यार्थ प्रकाश के प्रथम संस्करण में स्वामी दयानन्द ने नमक पर कर लगाने, न्यायालयों में चलाये जाने वाले अभियोगों में भारी स्टाम्प ड्यूटी लगाने तथा जंगल और पहाड़ों के समीप निवास करने वाले लोगों द्वारा जंगलों से लकड़ियाँ लाने वालों पर सरकार द्वारा उन दिनों वसूली जाने वाली चुंगी का विरोध किया था। सत्यार्थ प्रकाश-लेखन के ५६ वर्षों के पश्चात् महात्मा गांधी ने सन् १६३० में नमक कर के विरोध में सफल आन्दोलन किया था।

सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण में स्वामी दयानन्द ने अपनी मान्यताओं के विरुद्ध प्रथम संस्करण में सम्मिलित प्रक्षिप्त अंशों को हटाया उसमें तेरहवें और चौदहवें समुल्लास के साथ-साथ स्वमन्तव्यामन्तव्य अध्याय को भी जोड़ दिया जो पूर्व में प्रकाशित होने से रह गये थे। स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय संस्करण को सन् १८८२ ई. में उदयपुर (राजस्थान) में संशोधित करके लिखा जो उनके जीवनकाल में छपना तो शुरू हुआ पर सम्पूर्ण रूप से सन् १८८४ में उनकी मृत्यु के एक वर्ष के बाद प्रकाशित हो सका। सत्यार्थ प्रकाश में ३७७ ग्रन्थों का सन्दर्भ है जिसमें २९० पुस्तकों के प्रमाण दिए गए हैं। इसमें १५४२ वेदमन्त्रों का उदाहरण दिया गया है जबकि सम्पूर्ण प्रमाणों की संख्या १८८६ है। स्वामी दयानन्द तीन हजार ग्रन्थों को प्रामाणिक मानते थे। वर्तमान में भी सर्व सुविधा सम्पन्न पुस्तकालय में सभी पुस्तकों की उपलब्धता होने के बाद भी अत्यधिक सन्दर्भों वाले किसी ग्रन्थ के प्रणयन में कई वर्ष लग सकते हैं उसे मात्र साढ़े तीन महीने में लिखना एक चमत्कार ही है। जिस प्रकार साम्यवाद के जनक कार्ल मार्क्स ने ३४ वर्षों तक इंग्लैण्ड में बैठकर 'कैपिटल' ग्रन्थ का लेखन कर यूरोप का आर्थिक ढांचा हिला दिया था उसी प्रकार महर्षि दयानन्द के उक्त ग्रन्थ ने भारत के समस्त सांस्कृतिक,सामाजिक और आर्थिक ढांचे को भी हिलाकर रख दिया। सत्यार्थ प्रकाश में सैंकड़ों ग्रन्थों के न केवल उदाहरण हैं बल्कि उसके सन्दर्भों से स्वामी दयानन्द के अद्भुत स्वाध्याय का भी पता चलता है। वर्तमान में सत्यार्थ प्रकाश के रचना स्थल (उदयपुर) में आर्य समाज की ओर से एक भव्य स्मारक का निर्माण किया गया है जो एक दर्शनीय और प्रेरक स्थान है।

सत्यार्थ प्रकाश एक वृहद् ग्रन्थ है। यह पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित है। पूर्वार्द्ध में दस अध्याय मण्डन प्रधान और उत्तरार्द्ध में चार अध्याय खण्डन प्रधान हैं। अध्यायों के लिए समुल्लास शब्द का प्रयोग किया गया है।

सामान्यतः किसी पुस्तक में एक ही भूमिका होती है जिसमें ग्रन्थ का लेखक अपने ग्रन्थ-लेखन के उद्देश्यों व विचारों को पाठकों के समक्ष व्यक्त करता है। इस दृष्टि से यह देखकर आश्चर्य होता है कि सत्यार्थ प्रकाश में एक भूमिका के स्थान पर पाँच-पाँच अनुभूमिकाएं हैं। वस्तुतः सत्यार्थ प्रकाश सामान्य कोटि का ग्रन्थ नहीं है। अपितु यह अपनी अनेक विशेषताओं व पुस्तक लेखन संबंधी नवीन परम्पराओं का आधार है। अतः स्वामी दयानन्द ने इसमें पाँच भूमिकाएं यत्र-तत्र लिखी हैं :- ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रथम मुख्य भूमिका लिखकर ग्यारहवें, बारहवें, तेरहवें व चौदहवें समुल्लासों के प्रारम्भ में अनुभूमिका शीर्षक से उन्होंने दूसरी, तीसरी, चौथी और पाँचवी अनुभूमिकायें भी लिखी हैं। ग्रन्थ के अन्त में उन्होंने स्वमन्तव्यामन्तव्य प्रकाश शीर्षक से सत्य सनानत वेद विहित सिद्धान्तों की विशेष व्याख्यायें लिखी हैं,जिन्हें वे स्वयं भी मानते थे। सत्यार्थ प्रकाश के उन समुल्लासों को पढ़ने से पूर्व-मुख्य भूमिका और अनुभूमिकाओं में लिखित लेखक की भावनाओं को हृदयंगम कर ही पुस्तक का आशय अच्छी तरह समझा जा सकता है।

सत्यार्थ प्रकाश के पहले समुल्लास में ईश्वर के एक होने और वेदों के आधार पर उसके अनन्त नामों में से केवल १०० नामों की व्याख्या, द्वितीय में बालकों व बालिकाओं की शिक्षा, तृतीय में पठन-पाठन की विधि, चतुर्थ में गृहस्थाश्रम, पंचम में वानप्रस्थ व संन्यास आश्रमों की व्याख्या एवं नियमावली, षष्ठ में राजधर्म, सप्तम में ईश्वर तथा वेदोत्पत्ति, अष्टम में सृष्टि उत्पत्ति, नवम में विद्या-अविद्या व मुक्ति तथा दशम में आचार- अनाचार और भक्ष्याभक्ष्य विषय सन्निहित हैं। एकादश समुल्लास में तत्कालीन भारतवर्ष में प्रचलित भिन्न-भिन्न मतों व सम्प्रदायों की समालोचना के पश्चात् बारहवें समुल्लास में चार्वाक, बौद्ध व जैनमत की समीक्षा की गई है। तेरहवें और चौदहवें समुल्लास में क्रमशः ईसाई और इस्लाम मत की समीक्षा उन्हीं के धर्मग्रन्थों के आधार पर की गई है।

सन् १८८४ में सत्यार्थ प्रकाश के प्रकाशित होने के पश्चात् विश्व की २३ भाषाओं में अभी तक इसका अनुवाद हो चुका है। भारतीय भाषाओं में सत्यार्थ प्रकाश का

सर्वप्रथम अनुवाद पंजाबी की गुरुमुखी लिपि में १८६४ ई. में हुआ। इसके पश्चात् सत्यार्थ प्रकाश का क्रमशः उर्दू (१८६६), बंगला (१६०१), गुजराती (१६०५), तेलुगु (१६०६), मराठी (१६०७), सिन्धी (१६१२), संस्कृत (१६२४), तमिल (१६२५), उड़िया (१६२७), कन्नड़ (१६३२), मलयालम (१६३३) के बाद १६७५ ई. में असमिया में अनुवाद हुआ। विदेशी भाषाओं में सर्वप्रथम अनुवाद १६०६ ई. में अंग्रेजी में हुआ। १६३१ ई. में नेपाली, १६४० ई. में फ्रेंच, १६५८ ई. में चीनी, १६५६ ई. में बर्मी के बाद अफ्रिका की स्वाहिली भाषा में भी सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद हुआ। (नीदरलैण्ड के डॉ. बीरे ने डच भाषा में सत्यार्थ प्रकाश का अनुवाद २०१० में किया है) पुरातत्व की दृष्टि से गुरुकुल झज्जर (हरियाणा) के संग्रहालय में ४३२ ताम्रपत्रों में सम्पूर्ण सत्यार्थ प्रकाश को उत्कीर्ण करवाकर १६८३ ई. में रखा गया है। इसके अतिरिक्त नेत्रहीन व्यक्तियों के लिए ब्रेल लिपि में भी सत्यार्थ प्रकाश का मुद्रण हुआ है।

सत्यार्थ प्रकाश के अध्ययन से वैचारिक क्रान्ति का सूत्रपात हुआ है। परतन्त्र भारत में पेशावर (१८६२ ई., इलाहबाद १६०२ ई., पटियाला १६०६ ई., संयुक्त प्रान्त (वर्तमान उत्तरप्रदेश) १६१० ई., सिन्ध (१६४३-४४ ई.) और स्वतंत्र भारत में १६४८ ई. में भोपाल, १६८० ई. में जम्मू कश्मीर में और १६८६ ई. में हैदराबाद और कोलकाता में सत्यार्थ प्रकाश पर प्रतिबन्ध और मुकदमादि का प्रयत्न किया गया पर यह सब असफल हो गया। सत्यार्थ प्रकाश के समर्थन और विरोध में अभी तक अनुमानतः चार सौ से अधिक पुस्तकें छप चुकी हैं। भारत के सुप्रसिद्ध उद्योगपति सेठ युगलकिशोर बिड़ला के शब्दों में सत्यार्थ प्रकाश जैसा ग्रन्थ सच्चे आर्य सनातन धर्म का संदेश देने के साथ साथ अंधविश्वास और पाखण्ड को भी दूर करता है। इसके पढ़ने से तर्कबुद्धि का विकास होता है। मनुष्य मात्र के कल्याण की भावना से यह ग्रन्थ लिखा गया है। किसी के प्रति इसमें द्वेष नहीं है। ईसाई, मुसलमान भी यदि तेरहवें और चौदहवें समुल्लास को द्वेषरहित होकर पढ़ें तो वे भी धर्म के तत्व को समझने में समर्थ होंगे।

यदि आप मनुष्य हैं तो समग्र क्रान्ति और सत्य-असत्य के निर्णय के लिए अपनी मातृभाषा में सत्यार्थ प्रकाश को पढ़ें। यह पुस्तक सभी शहरों के आर्य समाजों

बोध कथा

आचार्य विनोबा भावे की माँ सहृदय और दयालु थीं। वह शुरू से ही विनोबा जी को अच्छी शिक्षा व संस्कार देने में जुटी थीं। विनोबा जी भी बचपन में अन्य बच्चों की तरह ही शरारती थे। एक दिन विनोबा जी की पड़ोसिन को किसी जरूरी काम से बाहर जाना पड़ा। उस पड़ोसिन का भी एक छोटा बच्चा था। वह बच्चे को उस स्थान पर नहीं ले जा सकती थी। इसलिए उसके सामने समस्या आ खड़ी हुई कि बच्चे को कहाँ पर छोड़े?

जब यह बात विनोबा जी की माँ को मालूम हुई तो उन्होंने बच्चे को अपने यहाँ छोड़ने के लिए कहा। पड़ोसिन को विनोबा जी की माँ के सरल हृदय, ममता व प्रेम पर पूरा विश्वास था। इसलिए वह बच्चे को उनके पास छोड़कर चली गई। बच्चा विनोबाजी के साथ खेलने में मस्त हो गया। एक माँ का समान स्नेह और सद्भाव दोनों बच्चों पर बराबर रहा। जब खाने का समय हुआ और माँ भोजन पकाकर दोनों बालकों को देने लगी तो विनोबाजी को अपनी माँ के स्वभाव में कुछ अंतर नजर आया। उन्होंने देखा कि माँ उन्हें सूखी रोटियाँ दे रही हैं जबकि पड़ोसी बालक को घी से चुपड़कर रोटियाँ अपने हाथों से खिला रही हैं।

यह देखकर वह माँ से बोले- 'तुम मेरी माँ हो लेकिन तुम मुझे तो सूखी रोटियाँ दे रही हो और इसे घी की रोटियाँ दे रही हो। आखिर ऐसा भेदभाव क्यों?'

विनोबा जी की बात सुनकर माँ बोलीं, 'बेटा, घर में इतना घी नहीं कि दोनों को दे सकूँ। तू तो मेरा बालक है। पर यह तो भगवान का बच्चा है। अतिथि को भगवान कहते हैं। इसलिए भगवान के बच्चे में और अपने बच्चे में कुछ तो अंतर होना ही चाहिए। हमें कष्ट सहकर भी अतिथि को सुख देना चाहिए।'

माँ की भावना विनोबा जी समझ गए और इस प्रकार बचपन से ही उनके व्यक्तित्व में श्रेष्ठ संस्कारों और सद्विचारों का समावेश हो गया।

A Linguistic note on the Polynymic interpretation of the Vedic language

- Dr. Mahavir Mimansak

Wittgunstein, a renouned linguist, has rightly remarked that polynymity reduces a language to absurdity. The infalliable logic behind this linguistic observation is that the sole function of a language is to convey the exact intention of the speaker to the hearer, अर्थगत्यर्थः शब्दप्रयोगः as has been said by the Indian grammarians. Polynymic use of a word renders the language to ambiguity and redundance. A word having multi meanings fails to convey the exact specific connotation of the speaker. Moreover, it makes the other words containg the same one specific import unnecessary and hence redundant, thus causing the language burdensome and uneconomically superfluous. Th golden linguistic principle was laid down long ago by our Mimansakas in their statement अन्याय्यं पुनरनेकार्थत्वं Polynymity in a language is unjustifiable and hence untenable. The Mimansakas with this ruling sought to bring out the real import of the vedic language. This needs further investigation and explanation.

The problem of the real and exact import of the vedic lore contained in the vedic language is of utmost significance atleast both from the historic as well as academic point of view. The problem is not a new one. It has it's deep root in antiquity even before Christ, which has been eating into real essence of the vedic content, burying it down under deep layers of ignorance and arbitrary whims of the vedic commentators, thus drifting the quint-essence of the Vedas away and away from time to time and presenting the vedic import in complete distortion.

This situation of arbitrary interpretation of the vedic language existed even before Yaska the author of the *Nirukt*. Yask in his *Nirukt* supplies the documentary evidence that polynymous interpretation of the vedic language was in vogue even before his time. He refers to atleast eleven types of schools of vedic interpretation which used to interpret the Vedic language in their own way totally differing from each other, meaning thereby that each and every vedic word had various meanings. Yask explicitly makes mention of these schools by names,i.e., इति याज्ञिकाः, the ritualists explain this *mantra* this way; इति पौराणिकाः, the pauranikas explain this *mantra* this way; इति ऐतिहासिकाः, the historians interpret this *mantra* this way; इति वैयाकरणाः, the grammarians explain this *mantra* this way; इति नैरुक्ताः, the etymologists explain this *mantra* this way, इति केचित्, some explain this *mantra* this way; इत्यपरे, while others explain this *mantra* this way, so on and so forth. This quarrel among the Vedic interpreters made a mess of the vedic lore and provided a way for ever-lasting uncertainty, chaos and confusion regarding the real import of the Vedic language. This tendency of the different schools of interpretation of the language turned the Vedas into a pandora's box wherefrom one can bringout anything of

one's own imagination. This is totally against the linguistic principle violating all the norms which no language can afford.

This arbitrary, multifarious hotch- potch method of vedic exigesis resulted in a very strong anti-Vedic slogan raised by antagonist **Kautsa** that the Vedic *mantras* are meaningless "अनर्थकाः मंत्राः इति कौत्सः" at Yaska's time.

It is worth mentioning here that polynymity in the Vedic language is much pleaded in the name of Yaska who devised the etymologic root-based method of Vedic interpretation. But, it is not so and scholars have totally mistaken Yaska in this regard. Yaska's position is altogether opposed to it.

Yaska, a great linguist of his time, took upon himself the task to put to an end to this controversy, to protect the real import of the Vedic language and to save the same from arbitrary and whimsical imaginary interpretations. He propounded and established the linguistic principles to bring out the real intention of the Vedic seers God contained in the *mantras*. He therefore, stated that seers had a definite and exact intention to express through a particular mantra of which the Devata is made headline as subject matter of the *mantra*, "यत्काम, ऋषिरार्थपत्यमिच्छन्... स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्देवतः स मंत्रो भवति" ,Yaska was of the clear view that each and every word of the Vedic language was used by the seers God to express a definite and exact meaning, and that they can not and should not be interpreted in a polynymous way. This linguistic rule put forth by Yaska was established by him in his *Nirukta* further in a debating manner with his rivals who maintained that etymological method of Vedic interpretation would render the words as polynyms, "अथ चेत् सर्वाणि नामान्याख्यातजानि स्युर्यः कश्चित् तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथाचक्षीरन्, यः कश्चाध्वानमश्नुवीताश्वः स वचनीयः स्याद्यत् किञ्चित् तृन्द्यात् तृणं तत्" whosoever covers the path, should be called Aśva (horse), whichever scratches should be called Tṛṇa (Straw). This was one of the objections raised by antagonists against the Yaska's theory of etymological method of Vedic interpretation. Yaska's reply to this proposition for conceding polynymity in the language by his antagonists must be always borne in their mind by the Vedic scholars. Yaska pleads in this regard by putting up a counter – linguistic proposition which can not be denied even by his antagonist. To quote Yaska, he says , "यथो एतत् यः कश्च तत्कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथाऽऽचाक्षीरन्न् इति पश्यामः समानकर्मणां नामधेयप्रतिलंभमेकेषां नैकेषाम्, यथा तक्षा परिव्राजको जीवनो भूमिज इति" word can not denote all the various objects, though may be having the same etymological referendum, for instance the word *takṣan* (wood-cutter, carpenter), *parivrājaka* (all round-wanderer, mendicant), *Jīvana* (life-giver, water), *bhūmija* (born of earth, coal), etc., denote only one specific object though their etymological refference is multifarious. Take the word parivrājaka which denotes only mendicant because he wanders everywhere. It does not denote all the objects that rotate or wander. This is acceptable even to Yaska's antagonists who label the charge of polynymity against his etymological theory. Thus, the etymological method of Vedic interpretation does not at all issue the

license to interpret the word as polynym, Yaska, who is propounder of the etymological method for Vedic interpretation, strictly subscribes to the view that words, though root-born, have only one specific meaning, i.e., they are not but Yogarudha. Etymology is only to explain, determine and justify the exact definite specific meaning which a word denotes as he says "अर्थनित्यः परीक्षेत". It is the meaning which is to be determined. This linguistic reality is stated as "अन्यद्धि शब्दानां व्युत्पत्तिनिमित्तमन्यच्च प्रवृत्तिनिमित्तम्" The etymological genesis of a word is different whereas their usage for expression is different. Thus, Yaska clarifies his position as etymologist and rules out the polynymity as a linguist. According to Yaska, therefore, nominals are semantically yogarudha rather than merely yaugika, and hence they should be construed as such. Yaska needs to be understood in right perspective.

There is another point of confusion scholars fall pray to. They say that a Vedic word could be construed atleast in three ways into different meanings, i.e. आध्यात्मिक, आधिभौतिक आधिदैविक. This point also has been taken up by Yaska in his *Nirukta*. He says that a word can be explained only in one way either आध्यात्मिक आधिदैविक, आधिभौतिक i.e., प्रत्यक्षकृत् परोक्षकृत् and not in all the threefold ways. If the conjugational ends into Ist person the *mantra* is to be construed as आध्यात्मिक i.e., pertaining to the self. If it has IInd person in the verbal form the *mantra* is to be explained in प्रत्यक्षकृत् way , i.e., आधिदैविक! And if the verbal form in a *mantra* has IIIrd person, it has to construed in परोक्षकृत् i.e., आधिभौतिक way. No *mantra* can be explained and construed in more than one way as the verbal form in a *mantra* has got only one person either Ist or IInd or IIIrd. It may be mentioned that this does not contradict the threefold interpretation of the Vedas as putforth by Swami Dayananda as he abides by Yaska.

Despite clearly laying down by Mimansakas and Yaska the linguistic principles to interpret the Vedic language as exact, accurate and specific denotative expression excluding all sorts of uncertainity/ ambiguity of loose and hoth-potch interpretation of the later commentators- both eastern and western, and medievals and moderns–indulged in the same mistake thus creating utter confusion and a bit mockery of the Vedic lore. No commentator can claim that he has determined the exact import of the Vedic language.

This linguistic principle of a word having one specific and exact meaning has a direct appeal to motivate the Vedic scholars to bring out and determine the exact specific content of the Vedic language expressed by God seers to denote a particular object to quote Yaska and Mimansakas- "अर्थवन्तः शब्दसामान्यात्". The vedic words are as exactly meaningfull as the Laukika words are because both are altogether similar in their linguistic and semantical nature. Otherwise Prof. Luis Renou has rightly warned that the 'Destiny of the Vedas' lies in darkness and dangerous hands. It could be well-summed up by the words in the Mahabharat- "बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति"

Vaidik shodh sadan,
A-3/11, Pashchim Vihaar
New Delhi-110063

माँ का दूध शिशु के लिए अमृत है

–अशोक आर्य

यह परम सत्य है कि शिशु के जन्मते ही उसके भरण-पोषण की व्यवस्था जन्मदाता परमात्मा कर देता है। स्तनपायियों में माँ के स्तनों में दूध आ जाता है। हर प्रजाति के लिए यह दूध भी विशिष्ट होता है। यही दूध उस प्रजाति के नवजात शिशु के लिए सर्वाधिक प्राकृतिक, हानिरहित तथा पौष्टिक होता है। उदाहरण के लिए हाथी के बच्चे को बल की आवश्यकता होती है अतः हथिनी के दूध में पोषक तत्त्व सर्वाधिक होते हैं।

सील मछली की सन्तान को ठण्डे पानी में रहना होता है, अतः उसको उस ठण्ड का सामना करने के लिए काफी सारी वसा की आवश्यकता होती है, जो कि मादा सील के दूध में होती है।

वहीं मनुष्य के बालक को बल के साथ-साथ मस्तिष्क के विकास की सर्वाधिक विशिष्ट आवश्यकता होती है। अतः माँ के दूध (Human Milk) में पोषक तत्त्व यथोचित अनुपात में होते हैं जिससे वह दूध बालक आसानी से पचा सके, साथ ही उन पोषक तत्त्वों के संघटक भी ऐसे होते हैं कि जिनसे मस्तिष्क का विकास विशेष रूप से हो सके।

यह ठीक है कि सभी प्रजातियों के दूध में वसा, प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन, खनिज और पानी ही पोषक तत्त्व के रूप में होते हैं। पर विभिन्न प्रजातियों की सन्तान के लिए उनकी माँ के दूध के पोषक तत्त्व, मात्रा तथा गुणवत्ता में उसी के लिए सर्वाधिक अनुकूल होते हैं।

उदाहरण :- Human Milk में प्रोटीन की मात्रा यद्यपि कम होती है पर इसके संघटक अमीनो एसिड इस प्रकार के होते हैं कि बच्चे के मस्तिष्क का तेजी से विकास हो सके। इसके लिए उत्तरदायी अमीनो एसिड Taurine है जो मानव दूध में अच्छी मात्रा में पाया जाता है। गाय के दूध की 'केसीन' प्रोटीन मानव शिशु द्वारा पचाने में कठिन होती है, जबकि मानव दूध की प्रोटीन सुपाच्य होती है क्योंकि उसमें Whey ज्यादा होता है।

इसी प्रकार मानव दूध में वसा को सुपाच्य बनाने हेतु एक Enzyme Lipase पाया जाता है जो वसा को छोटे globules में तोड़, बेहतर अवशोषण योग्य बना देता है।

मानव दुग्ध की वसा में उपस्थित Linoleic acid और Linolenic acid शिशु में उच्च गुणवत्ता वाली Myelin के निर्माण में सहायक होते हैं जो कि तंत्रिका तंत्र को

तालिका (विभिन्न प्रजातियों के दूध में पोषक तत्वों की मात्रा)

नाम प्रजाति	वसा की मात्रा %	प्रोटीन %	शुगर %	खनिज %	पानी %
मनुष्य	०३.४	१.७	६.४	०.३	८८.२
गाय	०३.७५	३.४	४.७५	०.७५	८७.३५
भैंस	०७.६	५.६	४.५	०.८	८०.६
बकरी	०४.६	४.४	४.२	०.८	८६.०
हाथी	१९.६	३.१	८.८	०.७	६७.८

सौजन्य – जे.आर. निकोल्स

ढकती है तथा संवेदनों के आदान प्रदान में सहायक होती है।

यहाँ यह भी आश्चर्यजनक है कि माँ के दूध में संतृप्त वसा बिल्कुल ना के बराबर होती है। Butyric acid बिल्कुल नहीं होता है। जबकि गाय भैंसादि के दूध में संतृप्त वसा ही अधिक होती है। इस तथ्य का महत्व पाठक समझ सकते हैं।

माँ के दूध में गाय, भैंस, बकरी आदि के दूध की अपेक्षा से खनिज तत्त्व लगभग एक तिहाई मात्रा में ही होते हैं यह तथ्य है, परन्तु इससे माँ के दूध को बलहीन अथवा कमजोर समझने की भूल कदापि न कर लेना चाहिए, कारण कि मात्रा भले ही कम सही परन्तु Bioavailability कई गुना होने से (अर्थात् काम में ज्यादा आना, व्यर्थ कम जाना) यही गुणकारी होते हैं।

एक अध्ययन के अनुसार बाजार में जो मिल्क पाउडर आदि शिशु के लिए आते हैं उनमें उपस्थित आयरन का अवशोषण मात्र चार प्रतिशत होता है जबकि माँ के दूध का आयरन ५० से ७० प्रतिशत तक अवशोषित होकर Blood stream में चला जाता है।

एक पोषण वैज्ञानिक का कहना ठीक ही है कि Breast Milk puts nutrients where they belong, in baby blood not in baby's bowl.

एक शोध के अनुसार माँ के दूध में ऐसे तत्त्व होते हैं जो बैक्टीरिया व वाइरस से शिशु की रक्षा करते हैं। इसमें antibodies प्रमुख हैं। ऐसे रक्षक तत्वों में Lactoferrin, secretory Iga, Lysozyme, प्रमुख हैं।

एक और अत्यन्त विशेष बात है कि स्तन दूध में Leukocytes होते हैं, जो संक्रमण के खिलाफ सिपाही के रूप में लड़ते हैं।

इस लेख में दी गई तालिका में आप स्पष्ट देख रहे हैं कि मानव दूध में कार्बोहाइड्रेट सर्वाधिक है यही शिशु की ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में माँ के दूध का पुरजोर समर्थन किया है। सत्यार्थ प्रकाश के द्वितीय समुल्लास में उन्होंने स्पष्ट लिखा है- प्रसूता का दूध छः दिन तक बालक को पिलावे, पश्चात् धायी पिलाया करें (विशेष- यहाँ धायी की व्यवस्था के संपुष्टिकारक विचारों को प्रस्तुत करने का अवकाश नहीं है पर यह भली प्रकार समझ लें कि धायी भी एक माँ ही है, उसका दुग्ध भी Human Milk है। यहाँ हम इसी बात पर जोर देना चाहते हैं कि स्वामी जी गौ दुग्ध के भक्त होते हुए भी, नवजात बालक-बालिका के लिए, Human Milk को ही श्रेष्ठ मानते हैं व प्राथमिकता देते है) देखिये वे आगे लिखते है 'जो कोई दरिद्र हो, धायी को न रख सके तो वे गाय वा बकरी के दूध में उत्तम औषधि जो कि बुद्धि, पराक्रम, आरोग्य करने हारी हों उनको शुद्ध जल में भिजा, औंटा, छानके दूध के समान जल मिलाके बालक को पिलावें।'

यहाँ एक बात और ध्यान में आयी है जिसका उल्लेख करना आवश्यक है। सत्यार्थ प्रकाश की पांडुलिपि में प्रसवोपरांत अधिक समय तक प्रसूता का दूध न पिलाने के निर्देश के पीछे दो हेतु दिए हैं।

१-प्रसूता के दूध में बल कम होता है। (उस समय उसके दूध में बल भी कम होता है)

२- स्त्री प्रसव समय में निर्बल हो जाती है।

परन्तु ऋषिवर ने सत्यार्थ प्रकाश के प्रूफ देखते समय पहली वजह अर्थात् 'उस समय उसके दूध में बल भी कम होता है' इस वाक्य को निकालकर अपने विपुल स्वाध्याय व अप्रतिम मेधा का परिचय दिया। ऊपर के लेख में यह स्थापित हो चुका है कि बालक के लिए माँ का दूध ही सर्वोत्तम है। माँ के दूध में प्रारम्भ में जो पीला सा तत्त्व (कोलोस्ट्रम) होता है वह तो बालक के लिए अमृत समान होता है। अतः यहाँ विचारणीय है कि बल किसे कहते हैं? अगर आप कहें कि जिसमें वसा आदि दुग्ध तत्त्व अधिक हों, तो फिर ऊपर की तालिका के अनुसार हथिनी का दूध सर्वाधिक बलशाली है पर सभी सुधीजन इस बात पर सहमत होंगे कि मानव शिशु को हथिनी का दूध पिलाना मूर्खता होगी, बालक इसे पचा ही नही पायेगा ऐसा करना अत्यंत नुकसानदेह होगा, यह ऋषि-मान्यता के विपरीत भी होगा क्योंकि ऋषि स्वयं लिख रहे हैं कि गाय आदि का दूध उपयोग करे तो उसमें उतना ही जल मिला लेवें अर्थात् dilute कर लेवें। स्पष्ट है कि जो जिसके लिए पाचन के अनुसार सर्वाधिक युक्त है तत्संदर्भ में वही बल वाला है। अतः सत्यार्थ प्रकाश की प्रूफ रीडिंग के समय 'प्रसूता के दूध में बल कम होता है' इसे ऋषि द्वारा हटा दिया गया यही उनकी मान्यता के सर्वथा अनुकूल है।

बकरी का दूध तो यहाँ आपात स्थिति है,अपरिहार्य स्थितियों में ऐसा करना भी पड़े तो गाय अथवा बकरी के दूध में आधा पानी तथा उपयुक्त औषधियाँ मिलाकर बालक के पाचन योग्य बनाना होगा। महर्षिवर की यही मान्यता आज के समस्त पोषण विशेषज्ञ भी मानते हैं।

अनेक पोषण विशेषज्ञ तो यहाँ तक स्थापित करते हैं कि किन्हीं कारणों से माँ यदि दूध न पिला पाए तो Milk Donor की व्यवस्था होनी चाहिए। विचार करें कि यह Milk Donor धायी का ही नवीन नाम नहीं है?

लेखक - खाद्य विश्लेषण विशेषज्ञ हैं।

नवलखा महल (सत्यार्थ प्रकाश भवन)

कतिपय गतिविधियाँ

१. प्रतिदिन वैदिक मंत्रों के प्रसारण से वातावरण को पवित्र करना, संध्या, यज्ञ, सत्यार्थ प्रकाश कथा प्रातः एवं सायं।

२. प्रत्येक मास के प्रथम रविवार को नगर के सभी आर्यजनों/आर्य परिवारों द्वारा सामूहिक सत्संग (सायं ५.३० से ७ बजे, ग्रीष्म ऋतु), (सायं ५ से ६.३०, शरद ऋतु)

३. प्रतिवर्ष अब तक विश्वभर में विश्व विख्यात् हो चुके सत्यार्थ प्रकाश महोत्सवों का आयोजन।

४. दयानन्द दर्शन, सत्यार्थ दर्शन, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत, 'वैदिक संस्कृति एक सरल परिचय' जैसे उत्कृष्ट साहित्य का प्रकाशन।

५. साहित्य विक्रय केन्द्र-जहाँ निर्माणोपयोगी सत्साहित्य के साथ महर्षि दयानन्द सरस्वती के सभी ग्रन्थ विक्रयार्थ उपलब्ध हैं।

६. शैक्षणिक यात्रा पर उदयपुर पधारे बालक बालिकाओं को दयानन्द जीवन दिग्दर्शन।

७. गृहों पर यज्ञ, संस्कार, जन्म-दिन आदि विशुद्ध वैदिक रीति से सम्पन्न कराने की सम्पूर्ण व्यवस्था। सारी व्यवस्था हम करेंगे आप केवल फोन करें। सम्पर्क करें: २४१७६६४, मो. ९८२९०६३११०, ९३१४५३५३७९

८. ग्राम्य अंचल में वेद प्रचार रथ व वैदिक संस्कृति प्रचार योजना के अद्भुत सफल कार्यक्रम।

९. नवीन पीढ़ी में वैदिक शिक्षाओं के समावेश हेतु ग्राम्य अंचलों के राजकीय विद्यालयों में वर्ष में लगभग सात माह प्रचार कार्य।

१०. स्वाध्याय परीक्षण योजना के माध्यम से अब तक ३०००० बालक बालिकाओं तक सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को पहुँचाना, परीक्षा लेना व पुरस्कृत करना। सत्यार्थ प्रकाश निबन्ध प्रतियोगिताओं का आयोजन।

११. बेबसाइट (www.satyarthprakashnyas.org) के माध्यम से विश्वभर में ऋषि जीवन तथा सत्यार्थ प्रकाश की शिक्षाओं को पहुँचाना।

१२. माता लीलावन्ती सभागार में वैदिक विषयों पर संगोष्ठी तथा ग्रीष्मावकाश में सघन वैदिक संस्कृति प्रशिक्षण शिविर।

१३. जनोपयोगी मासिक पत्रिका सत्यार्थ-संदेश का प्रकाशन। सत्यार्थ प्रकाश-अस्मिता-सुरक्षा अभियान। सत्यार्थ प्रकाश-मानक संस्करण-प्रकाशन।

न्यास द्वारा समस्त संस्कारों हेतु समुचित व्यवस्था

जीवन में उदात्त नैतिक मूल्य स्वयमेव स्थापित नहीं होते, भागीरथ प्रयत्न करना होता है। भारतीय मनीषा ने इस हेतु १६ संस्कारों का विधान किया है। जो प्रत्येक गृहस्थ को करवाने चाहिए। कई सज्जनों को लगता है कि यह कठिन तथा व्यय-साध्य कार्य है। हमारा निवेदन है कि ऐसा कुछ नहीं है। संस्कार चित्त-प्रसाद-अभिवृद्धि का हेतु है। आप केवल दूरभाष पर अपनी अभिलाषा बतावें। न्यास के पुरोहित पंडित नवनीत आर्य सारा कार्य, स्वतः व्यवस्था कर सुन्दरता से सम्पन्न करायेंगे।

दूरभाष : ०२९४-२४१७६९४, चलभाष ०९३१४५३५३७९

कृपया न्यास की वेबसाईट : www.satyarthprakashnyas.org पर अवश्य देखें

स्त्री सौन्दर्य को सस्ता ना बनाएँ

– साधना सुनील विवरेकर

{आज नारी की जो छवि टी.वी. सीरियलों में, सिनेमा के रुपहले पर्दे पर व विज्ञापनों में दिखाई जा रही है, उसमें आधुनिकता व स्वतंत्रता के नाम पर नग्नता व शारीरिक प्रदर्शन की प्रतिस्पर्धा चरमोत्कर्ष पर है। विज्ञापनों में नारी को जिस वीभत्स रूप में दिखाया जा रहा है उसे देखकर लगता है कि पिछले एक ही दशक में नारी ने अत्यधिक प्रगति (?) कर ली है।

कैरियर, प्रतिस्पर्धा व जल्द से जल्द ढेर-सा पैसा व प्रसिद्धि (?) पाने की लालसा ने कुछ संपन्न व धनाढ्य स्त्रियों को जिस राह चलने का मोह जगाया है वह हमारी संस्कृति, सभ्यता पर तो कुठाराघात है ही, साथ ही अपरोक्ष रूप से नारी के शोषण की अति भी है।}

शोषण भी ऐसे मीठे जहर की तरह कि जिस पर हो रहा है वह उसके दर्द, वेदना व चुभन को अनुभव करने की संवेदनाएँ, शर्म, लिहाज सब कुछ खो चुकी है। घरों में, ग्रामीण क्षेत्रों में या महानगरों में जहाँ नारी परिवारजनों, पति या ससुराल पक्ष की यातनाएँ भोगने को मजबूर है, वहाँ तो न्यायपालिका, समाजसेवी संस्थाएँ या मायके वाले उसकी मदद कर उसे इस स्थिति से उबार सकते हैं। कार्यस्थल पर होने वाले परोक्ष या अपरोक्ष शोषण या यौन शोषण के खिलाफ भी आवाज उठाने पर या न्याय माँगने पर इंसाफ मिल सकता है व दोषी को सजा भी मिल सकती है।

लेकिन जब स्त्री स्वयं ही शरीर के प्रदर्शन पर गर्व करे, उन ओछी हरकतों को पैसा कमाने का जरिया बनाए व गंदी, अश्लील हरकतों पर जिस्म थिरकाने को अपने कैरियर की आवश्यकता बताए, वहाँ ईश्वर भी धरती पर अवतार ले लें तो भी उसका शोषण रोक नहीं सकता। टी.वी. सीरियलों के माध्यम से अपनी बहन, बेटियों, भाभियों यहाँ तक कि माँओं को भी अश्लील व न के बराबर कपड़ों में, सिगरेट के धुएँ के छल्ले बनाते या शराब का गिलास हाथ में थामे लड़खड़ाते, कभी किसी तो कभी किसी पुरुष की बाँहों में झूमते देख भला किस भारतीय को गर्व महसूस होता होगा?

स्त्री शक्ति, स्त्री सशक्तीकरण व स्त्री की भावनाओं की अभिव्यक्ति का यह कैसा घिनौना रूप है। जिसे देख हर सभ्य सुसंस्कृत स्त्री अपने ही घर में लज्जित होती है। अपनों के बीच, बड़ों के बीच सिर उठाने की, उनके साथ बैठकर टी.वी. देखने की हिम्मत तक नहीं जुटा पाती। क्या स्त्री स्वातंत्र्य व आधुनिकता की दुहाई देने वाले, प्रगतिशील विचारों वाले झूठा आडंबर रचकर सार्वजनिक रूप से स्त्री-अंग प्रदर्शन कर खुलेआम स्त्रियों का शोषण नहीं कर रहे?

सभी को इस पर आपत्ति है, सभी शर्मिंदा हैं, पर क्या इतने लाचार हैं कि इसका खुलकर विरोध तक न कर सकें? छोटी-छोटी बातों पर एक-दूसरे की जान लेने को आतुर कट्टर धर्मावलंबी हों या स्त्री को मुक्त करा, स्वतंत्रता दिला उसे सशक्त बनाने में लगी समाजसेवी संस्थाएँ हों, प्रबुद्ध नागरिक हों या देश का कानून- वे सभी स्त्री के इस सार्वजनिक पतन को रोकने, संस्कृति व सभ्यता के हनन को बचाने का प्रयास क्यों नहीं करते?

क्या स्त्री का रूप लावण्य इतना सस्ता है कि उसकी ऊर्जा वस्तुओं को बेचने भर में लगाई जाए। जिस कोख से मानवता जन्म लेती है क्या वह मात्र प्रदर्शन की वस्तु है?ममता की छाँव जीवन का सृजन करती है उसका अश्लील रूप देखकर कौन-सा सुख व संतुष्टि मिलती है? उसका उपयोग कर ही क्यों प्रचारित, प्रसारित वस्तुएँ खरीदी जाएँ?

इन सबका जमकर विरोध ही नारी सशक्तिकरण को सार्थकता प्रदान करेगा व इस अश्लीलता को बंद करवाकर ही स्त्री का सम्मान करने की, उसे आदर देने की मानसिकता नई पीढ़ी में विकसित होगी। नारी प्रसव की वेदना व पीड़ा खुशी-खुशी सहकर मानवता का सृजन करती है। नई पीढ़ी को सुसंस्कृत व संस्कारित करने का जिम्मा उसका हमेशा से है। वह पति व परिवार के लिए प्रेम से हर बलिदान कर सकती है।

उसमें सृजन की शक्ति है, सहनशीलता व धीरज का बल है, त्याग करने का अदम्य साहस है व क्षमा करने का बड़प्पन है। अतः वह अशक्त, कमजोर व बेचारी कभी हो ही नहीं सकती। समाज व परिवार उसकी शक्ति के मोल को समझे, उसकी ऊर्जा का सही उपयोग करे व उसकी अभिव्यक्ति का आदर करे इसी में सबकी भलाई है।

(अंतर्जाल लेख)

सैषा त्रय्येव विद्या तपति

लेखक-आचार्य वेद प्रकाश श्रोत्रिय

{समादरणीय पाठक महानुभाव! सत्यार्थप्रकाश न्यास, नवलखा महल, उदयपुर महर्षि दयानन्द के सत्यार्थ को 'सत्यार्थ-सन्देश' नामक पत्र से आपके मन के उस द्वार तक पहुँचाना चाहता है जो किसी ओहार या पर्दे से ढका हुआ है। उस पर्दे को उठाकर उसके भीतर झाँकने की हिम्मत आपमें पैदा कर सकेगा। वेद एक महतो महीयान् शास्त्र है। इसके मधुमान्-समुद्र की यह एक बूँद आपके मन की समाधि के अनुरूप आपके ज्ञान की क्षमता बन सकेगी। वेद विषयक उलझन की वह प्रहेलिका जिसे घबराया हुआ मन उलझन कहता है,वह ऋषि कृपा से समाप्त हो जावेगी। समाहित मन से हृदयंगम किया हुआ लेख आपके चित्त-प्रसाद का कारण बनेगा।}

आरम्भ में पंचमहाभूतादि सत्व-रज-तमस् की साम्यावस्था में थे। इस समान व्यापक अवस्था को 'आपः' कहते हैं। 'यद् आप्नोद् तस्मादापः' जो सर्वत्र व्यापक हुआ इसलिए इसकी संज्ञा 'आपः' हुई। इसी को वेद में ऋत या पारमेष्ठ्य समुद्र कहते हैं। इसमें कोई गति या क्षोभ नहीं था। इस साम्यावस्था के धरातल पर जो प्रथम क्षोभ हुआ, वही अग्नि का स्पन्दन है। सृष्टि के प्रारम्भ में अभिव्यक्त होने के कारण इसे 'अग्रि' कहा जाता है। वही परोक्ष भाषा में 'अग्नि' कहा जाता है। ऋग्वेद में 'अग्निर्हि प्रथमजा ऋतस्य' अर्थात् इसे ऋत का प्रथमज कहा है। शतपथ में 'ब्रह्मास्य सर्वस्य प्रथमजम्' अर्थात् प्रजापति ने ब्रह्म का सर्वप्रथम सर्जन किया। नानाभाव या वृंहण ही ब्रह्म है। 'ब्रह्म ह्येवाग्निः', यह ब्रह्म ही अग्नि है। यह ब्रह्माग्नि सृष्टि के कार्य के लिए तीन प्रकार से व्यापृत हुआ (प्रजापतिः प्रजया संरराणस्त्रीणि ज्योतींषि सचते सषोडशी)। यही अग्नि मेधाभाव से अग्नित्रयी, त्रयीविद्या, वेदत्रयी या मनु का त्रयंब्रह्म कहलाता है। इसी के आधार पर सृष्टि का विकास हुआ। अग्नि ही त्रयी विद्या का प्रतीक है।

यह त्रिक् ही त्रयी विद्या है। अनेक त्रिकों से समन्वित प्राण-स्पन्दन से युक्त संस्थान ही त्रयी विद्या कहलाता है। जैसे अग्नि-वायु-आदित्य, प्राण-अपान-व्यान, पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ, वाक्-प्राण-मन, क्षर-अक्षर-अव्यय, विष्कंभ-केन्द्र-परिणाह, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, वसु-रुद्र-आदित्य, वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञ, हृ-द-य और ऋक्-यजु-साम।

प्रमाणस्वरूप शतपथ काण्ड १०, आ.५, ब्राह्मण-२ के आरम्भ के निम्नलिखित प्रमाण दृष्टव्य हैं-

यदेतन्मण्डलं तपति। तन्महदुक्थं ता ऋचः स ऋचां लोकः। अथ यदेतदर्चिर्दीप्यते तन्महाव्रतम् तानि सामानि स साम्नां लोकः। अथ य एष एतस्मिन्मण्डले पुरुषः, सोऽग्नितानि यजूꣳषि, स यजुषां लोकः। सैषा त्रय्येव विद्या तपति। तद्धैतदप्यविद्वाꣳस आहुः- त्रयी वाऽएषा विद्यातपति इति। वाग्घैव तत्पश्यन्ती वदति।।

अर्थात् यह जो सूर्य का मण्डल तप रहा है, वह 'महदुक्थ' नाम से है। यह ऋचारूप है। यही ऋचाओं का लोक अर्थात् स्थान है। यह जो प्रकाश फैल रहा है- वह 'महाव्रत' नाम से जाना जाता है। ये साम हैं। यह सामों का लोक है। इस मण्डल के बीच में जो 'पुरुष' है वह अग्नि है। ये ही यजुः कहे जाते हैं, यह यजुओं का लोक है। इस प्रकार यह त्रयी विद्या ऋक्, यजु और सामरूप से तप रहे हैं।

इस त्रयी विद्या को भिन्न-भिन्न कहने वाले भी अविद्वान् हैं। यह एक ही वाक् तीन रूपों से दिखाई देती हुई मानो बोल रही है। अस्तु!

बहुत गंभीरता से वैज्ञानिक विधि वा स्तर से विचार करने पर सारांश यह है कि ऋक् और साम अवधि मात्र हैं। अवधि अर्थात् मर्यादा बाँधने वाले हैं। यजुः इन दोनों ऋक् और साम का वाहन है। क्योंकि आवागमन तो अग्नि का ही होता है। उसके आने जाने की प्रक्रिया ही ऋक् और साम हैं। वह यजुः ही सर्वत्र ऋक् से साममण्डल तक फैला हुआ है। वेदों की मन्त्र रचना विज्ञान के अनुसार भी ऋक् और साम क्रमशः पद्य और गीतिरूप हैं। दोनों में ही मर्यादा बंधी रहती है।

अन्तर यह है कि गान में वितनन होकर ऋक् की अपेक्षा बहुत विस्तृत होता है। इसीलिए साम गीतिरूप है। यजु गद्यरूप प्रकीर्ण फैला हुआ है। यह मन्त्र रचना पद या वाक्य से सुस्पष्ट ही है। इस तथ्य को शतपथ के इस प्रमाण में देखा जा सकता है।

अयं वाव यजुर्योऽयं पवते। एष हि यन्नेवेदꣳसर्वं जनयत्येतं यत्तमिद्मनु प्रजायते। तस्माद्वायुरेव यजुः। अयमेवाकाशो जूः। यदिदमन्तरिक्षं। एतं ह्याकाशमनु जवते। तदेतद्यजुर्वायुश्चान्तरिक्षं च। यच्च जूश्च। तस्माद्यजुरेष एव यदेष ह्येति। तदेतद्यजुर्ऋक्सामयोः प्रतिष्ठितं। ऋक्सामे वहतः (शतपथ कां १०, अ.३, ब्रा. ५ कण्डिका १, २)

यहाँ पर यत् और जू इन दोनों शब्दों से (यज्जूः) से यजुः बना है। यत् का अर्थ चलता हुआ-गतिशील और जूः शब्द का अर्थ है स्थिर। इसलिए 'यत्' से वायु 'जू' शब्द से आकाश गृहीत है जो स्थिर है। वायु और आकाश का सम्मिलित रूप 'यजुः' कहलाता है। यजुः गतिशील है अतः सबको उत्पन्न करता है। और आकाश स्थिति शक्ति होने के कारण सबको प्रतिष्ठित करता है। यद्यपि हमने पूर्वोक्त प्रमाण में आए 'महोक्थ' और 'महाव्रत' शब्दों का अर्थ स्पष्ट नहीं किया है। यहाँ बिना किसी विस्तृत विवेचन के यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि महोक्थ से महाव्रत तक और लौटकर महाव्रत से महोक्थ तक भी आवागमन प्रक्रिया में आने जाने वाला तत्त्व यजुः ही है। 'महोक्थ' का सम्बन्ध ऋक् से और 'महाव्रत' का सम्बन्ध साम से है। अतः यजुः ऋक् और साम दोनों पर प्रतिष्ठित रहता है। ऋक् और साम इसका वहन करते हैं। बाहर निकालते और भीतर प्रवेश कराते हैं। इसलिए त्रयी अर्थात् तीनों वेद ही सबके उत्पादक हैं और प्रतिष्ठापक भी। यहाँ मैं यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि ये वायु और आकाश पंचभूतान्तर्गत वायु और आकाश नहीं हैं। ये वायु और आकाश तो बहुत पीछे बने हैं। वेद तो प्राणरूप हैं अतः उनके बहुत पूर्व की अवस्था है। वेदों से भूतों की उत्पत्ति होती है।

वर्तमान विज्ञान की दृष्टि से भी विचार करके देख सकते हैं। जैसे- विज्ञान पहले ऑक्सीजन,हाइड्रोजन आदि को मौलिक तत्त्व मानता था। परन्तु बाद में अन्वेषण करते करते यह विदित हुआ कि ये मौलिक तत्त्व नहीं हैं क्योंकि इनका भी परस्पर परिवर्तन होता है। मौलिक तत्त्व केवल दो ही हैं। (१) इलेक्ट्रोन (२) प्रोटोन। इनमें 'प्रोटोन' स्थिर है और 'इलेक्ट्रोन' चारों ओर घूमता है,उन दोनों से ही सब तत्त्व बने हैं,इस प्रकार गतिशील और स्थितिशील पदार्थों से जगत् की उत्पत्ति,आज का विज्ञान भी मानता है। किन्तु हमारे यहाँ पर ऋषियों ने बहुत पहले ही कह दिया और अपने ग्रन्थों में पूर्वोक्त वर्णनानुसार कह ही डाला।

सिद्ध हुआ कि संसार में सब गतियाँ यजुः से उत्पन्न हैं। जितने तेज-मण्डल हैं वे सब साम हैं। और ऋक् से सब मूर्तियाँ हैं। जिसको अपने यजुः लेकर मण्डल तक जाता है और मण्डल की परिधि से बाहर से कुछ आवश्यक सोम तत्त्व लेकर फिर भीतर लाता है। इस प्रकार कुल मिलाकर वेद-ब्रह्म से ही सृष्टि हुई जो वेदत्रयी कहलाती है। सारांश में पुनः कह दूँ कि ऋक् से यहाँ मूर्तिपिण्ड की उत्पत्ति बताई यह उसका वाक् रूप है। वाक् से ही सब मूर्ति पिण्ड बनते हैं। गति अर्थात् क्रिया का मूल यजुः ही है जो प्राणरूप है। क्रियाओं का मूल कारण प्राण ही है। तेज से रूप अभिप्रेत है। रूप तेज का ही मुख्य गुण है। रूप का ही वितनन होता है। जिसका कारण मन है। यही ऋक्-यजु और साम वेदत्रयी इस प्रकार वाक्-प्राण और मन कहलाए।

पाठकों की और अधिक विस्तृत जानकारी के लिए एक और प्रमाण का विवेचन किया जाता है कि ऋक्-यजुः-साम, वाक् प्राण और मन की लोकवती स्थिति में और क्या संगति है। तो शतपथ ४।६।७।१-५ में वर्णन है-

त्रयी वै विद्या ऋचो यजूꣳषि सामानि। इयमेवऽर्चोऽस्याꣳ ह्यर्चति। योऽर्चति स वागेवऽर्चो वाचा ह्यर्चति। योऽर्चति सोऽन्तरिक्षमेव यजूꣳषि। द्यौः सामानि। सैषा त्रयी विद्या सौम्येऽवरे प्रयुज्यते।।१।।........।।३।।

अभिप्राय यह है कि ऋक्, यजुः और साम नाम की जो तीन विद्याएँ हैं, उनमें यह पृथ्वी ऋक् है,अन्तरिक्ष यजुः है और द्युलोक साम है। यहाँ पर यह वाक् की एक साहस्री है। द्वितीय सहस्र विष्णु है और तृतीय इन्द्र है। पूर्वोक्त प्रकरण से आशय मिलाने पर पृथिवी-अन्तरिक्ष और द्यौ इस एक त्रिक् का कारण भी ऋक् यजु और साम है।

हमारी इस पृथिवी के प्राणरूप अग्नि की व्याप्ति सूर्यमण्डल तक है। इसलिए यहाँ पर जो साम उत्पन्न होता है उसका नाम 'रथन्तर' है। यह पृथ्वी का साम सूर्य के रथ का तरण करता है। सूर्यसाम तो बृहत्साम है, बहुत बड़ा है,पृथिवी का साम उसके भीतर समा जाता है।

इस प्रकार से पृथिवी मण्डल को लक्ष्य कर वेदों पर

विचार करें तो पृथिवी ऋक् है। और द्युलोक साम है जो सूर्य मण्डल का स्थान है। मध्य में जहाँ पृथिवी का रसरूप प्राण फैला हुआ है, वह अन्तरिक्ष यजुः कहलाता है। इस प्रकार पृथिवी से द्युलोक तक पृथिवी के देवता अग्नि की साहस्री वाक् कहलाती है। अन्तरिक्ष के देवता इन्द्र या विद्युत् की व्याप्ति एक साहस्री इन्द्र है। तृतीय आदित्य मण्डल में प्राण विष्णु प्राण की साहस्री होती है, इस प्रकार तीनों वेद सदा सम्मिलित रहते हैं। सभी पदार्थ इनसे ही उत्पन्न हैं। हमारी त्रिलोकी के तीन देवता अग्नि, वायु और आदित्य को कई श्रुतियों में ऋक्, यजुः और साम कहा गया है। अग्नि ऋक् है-वायु यजुः है और आदित्य साम है तथा कई श्रुतियों में इन तीनों से ही तीनों वेदों की उत्पत्ति भी बताई गई है। यथाः-

अग्नि वायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम्।
दुदोह यज्ञसिद्धयर्थमृग्यजुःसामलक्षणम्।। मनु।१/२३

बहुत से सज्जनों को यह शंका होगी कि यहाँ तीनों वेदों का ही वर्णन किया गया, चौथे अथर्ववेद का वर्णन क्यों नहीं आया? तो इसका उत्तर यह है कि वैज्ञानिक परिभाषा में ये तीनों वेद ही अग्नि रूप हैं और अथर्ववेद आप् रूप है जो इन तीनों वेदों में मिला हुआ है।

इस समस्त रोचक और महत्वपूर्ण विवेचना से यह स्पष्ट हो गया है कि ऋक् से मूर्ति-मूलभूत भौतिक पदार्थ है। यजु एक प्राण शक्ति है। इनको वैदिक परिभाषा में क्षर और अक्षर कहते हैं। इन दोनों का मूलभूत अविकृत ब्रह्म अव्यय कहलाता है। इस प्रकार क्षर-अक्षर और अव्यय तीन त्रयं ब्रह्मत्रयी विद्या ही कहलाते हैं। यही वाक् प्राण और मन हैं। एक रहस्य और प्रकट किया जाता है कि विश्व का मूल स्थिति तत्त्व है। उसमें रस भरा रहता है। रस के धरातल पर बलों का आविर्भाव होता है। बल ही गति तत्त्व है। गति ही स्पन्दन है। गति और आगति का एक द्वन्द्व है। दूसरे रूप में इसे फैलना-सिकुड़ना के भाव में देख सकते हैं। यही समञ्चन प्रसारण है, जो प्राण अथवा प्रजापति का निरुक्त=व्यक्त=मूर्त्त प्रत्यक्ष प्रकट रूप है। गति का उत्थान केन्द्र से परिधि की ओर होता है। परिधि तक पहुँचकर वही गति पुनः केन्द्र की ओर लौटती है तब वह आगति बन जाती है। इन दोनों का सन्तुलन अर्थात् इनका ठहराव स्थिति कहलाती है। ब्राह्मण में गति को इन्द्र, आगति=समञ्चन को विष्णु और स्थिति को ब्रह्मा कहते हैं। यही स्थिति तत्व ब्रह्मा है जिससे गति का जन्म होता है-दूसरी भाषा में जागरण है। स्थिति=निद्रा है और आगति प्रसुप्ति का सम्मिलित रूप है। स्थिति-गति-आगति की यदि व्याख्या करना चाहें तो एक और दूसरी विद्या का प्रस्फुरण होता है, उसका नाम हृदय विद्या है।

हृदय में तीन अक्षर हैं- हृ-द-य। ये तीन हृ-द-य तो प्रकट हैं परन्तु इनकी संकेतिक दृष्टि स्थितिगति-आगति की ओर है। इन तीन अक्षर देवों में हृ-आहरण या आगति, द=विकिरण-प्रसारण या गति और य=गति-आगति का नियमन या स्थिति का प्रतीक है। ह=विष्णु है, द=इन्द्र है और प्रतिष्ठा तत्त्व य=ब्रह्मा है। इन्हीं तीनों तत्त्वों से जन्म -वृद्धि- विकास होता है। इस प्रकार स्थिति-गति-आगति के त्रिक् का नाम हृदय-विद्या है।

गति और आगति अभिव्यक्त विष्कम्भ और परिधि हैं। केन्द्र-विष्कम्भ परिधि की समष्टि से प्रत्येक संस्थान बनता है। इस संस्थान की पूरी छाप हृ-द-य तीन अक्षरों द्वारा कराई गई है। इसमें 'य' का अर्थ-यमयति नियम करने वाला प्रतिष्ठा तत्त्व=ब्रह्मा है। ब्रह्मा सर्वत्र नियमन ही करता है। यज्ञ उसका स्फुट उदाहरण है। 'द' का संकेत 'दो-अवखण्डने' से है। अवखण्डन अर्थात् शक्ति का क्षरण या केन्द्र से बाहर की ओर प्रवाह। इसे इन्द्र कहते हैं। ऋग्वेद में 'योजान्विन्द्रस्य ते हरी' कहा है। इसका अर्थ है कि दोहरी अर्थात् अश्वों के वाहन पर विचरता है। कौन? उत्तर-हरी। फिर स्पष्ट रूप से कहा कि ऋक् और साम ही हरी हैं अर्थात् वृत्त का विष्कम्भ या व्यास ऋक् है जिससे मूर्ति का आकार परिणाम नियन्त्रित रहता है। वृत्त की परिधि, उसका मण्डल घेरा साम है। ये इन्द्र के वाहन हैं। कुल मिलाकर परिणाम -केन्द्र-व्यास-परिधि का है। संज्ञाएँ ऋक्-यजुः और साम हैं। ये ही मौलिक वेद तत्त्व हैं, जिनसे सृष्टि का निर्माण होता है।

एक और बात-

द्यावा पृथिवी में व्याप्त वैश्वानर प्राणाग्नि प्रत्येक संस्थान की यज्ञाग्नि है। इसमें अग्नि द्वारा जिन देवों का आवाहन होता है और जो देव भूत के आधार पर निवास करते हैं- वे तैजस कहलाते हैं और तैजस अंश अपने भीतर जिस प्रज्ञा का आधान करते हैं-वह इन्द्र ही प्रज्ञात्मक प्राण कहलाता है। यही वैश्वानर तैजस और प्राज्ञ कहलाते हैं । इनका त्रिवृत भाव ही पूर्वोक्त मन-प्राण-वाक् समष्टि बनी रहती है। केवल वाक् से असंज्ञ=मिट्टी-पत्थर आदि बनते हैं,जिसे वैश्वानर कहते हैं। पुनः अन्तः संज्ञ =वृक्ष वनस्पति आदि प्राण से इसे तैजस भी कहते हैं तथा तीसरी ससंज्ञ=पशु-पक्षी मनुष्यादि मन अर्थात् प्राज्ञ प्राण से उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार वैश्वानर-तैजस-प्राज्ञ-वाक्-प्राण-मन और असंज्ञ -अन्तः संज्ञ और ससंज्ञ सृष्टियों का परस्पर भी

सम्बन्ध है।

एक रहस्य जिसको पूर्व में भी कुछ कहा जा चुका है उसको पुनः वैज्ञानिक चिन्तन से उद्घाटित किया जाता है। कि अब तक अनेक त्रिकों से समन्वित प्राणात्मक स्पन्दन से युक्त त्रयी विद्या के संस्थान को कहा है। जो ऋक्-यजुः-साम ही कहे गए हैं। परन्तु वेद तो चार हैं,अथर्ववेद का स्पष्टीकरण नहीं किया गया है। क्या इस चौथे वेद का अस्तित्व ही नहीं था?

अब तक विवेचना के सार के साथ यह रहस्य प्रकट किया जाता है।

'गति-आगति का क्षोभ कहें या त्रयी विद्या का तप कहें या पृषदाज्य का संभरण कहें' या विद्युत् शक्ति की सूक्ष्मतम मात्राओं का संपुजन कहें या यज्ञीय भाषा में अग्नि चयन कहें अथवा उखा-संभरण कहें-सृष्टि विद्या का एक ही तथ्य परिगृहीत किया जाता है कि जहाँ कहीं प्राणमयी सृष्टि होगी वहीं शक्ति के महान् स्थिर शान्त समुद्र के भीतर किसी एक बिन्दु पर प्राणात्मक स्पन्दन की इस प्रक्रिया की दुर्धर्ष सत्ता का प्रकट होना अनिवार्य है। 'अप्सु संक्लिश्य प्राविध्यत्' अर्थात् आपो लोक को संक्लिष्ट या पीड़ित करके अग्नि तत्त्व उसके भीतर प्रविष्ट हो जाता है= और वहीं से त्रयी विद्या या ऋक्-यजुः-साम या व्यास-केन्द्र-परिधि के रूप में स्पन्दन करता हुआ सत्यात्मक सृष्टि का विकास करता है।

नितान्त स्पष्ट है कि जिसके बीच अग्नित्रयी संस्थान ऋक्-यजु-साम के रूप में कार्य करता है कि चौथा आपो लोक है। प्रश्न उठता है कि आपोलोक है क्या? तो स्वतः तुरन्त उत्तर मिलता है-यह आपो लोक अथर्व ही है क्योंकि स्वयंभू तत्त्व अग्नि है और अथर्वा संज्ञक- परमेष्ठी जल है। परमेष्ठी अथर्वा है।

जिसे हम आप् तत्त्व या आपोलोक कहते हैं उसके भीतर गर्भ में प्राण का भली-भाँति प्रसारण अग्निगर्भित स्तोम का रूप है। अग्नि का त्रिक जिसे पहले ऋक-यजु और साम कहा गया है वे ही अग्नि के तीन लोक हैं। जिस शान्त धरातल पर यह स्पन्दन प्रारम्भ होता है -वह जल ही है जो आपोलोक है। पृथिवी-अन्तरिक्ष-द्यौ या ऋक्-यजु-साम रूपी आग्नेय संस्थान आपोलोक के भीतर परस्पर मिलन से सृष्टि करता है।

मातृकुक्षि में किसी गर्भित घटक कोश की कल्पना कीजिए। वही जन्म लेने वाले शिशु का आरम्भण है। उस कोश में अग्नि या स्पन्दनशील प्राण जागृत हो जाता है और अपने चारों ओर जलीय पोषणात्मक तत्वों को अन्न रूप में ग्रहण करके बढ़ने लगता है। एक कोश से दूसरा कोश क्रमशः सम्वर्द्धन होते होते हुए गर्भस्थ शिशु का विकास हो जाता है। प्रत्येक घटक कोश भूतसमन्वित प्राण है जिसके चारों ओर आपोलोक या जल का आवरण या मण्डल या परिधान है। एक एक कोश अग्नि का मूर्त कण है। अग्नि को साक्षात् घृत का रूप कहा जाये तो प्रत्येक कोश उस घृत का सूक्ष्मतम भाग है बिन्दु है। जिसे वैदिक भाषा में 'पृषत्' कहा जाता है। महान् आपोमय समुद्र पर आग्नेय तत्वों का प्रकट होना विश्व की आरम्भिक घर्षण क्रिया का परिणाम है। घर्षण या मन्थन एक बल है। शान्त रस के धरातल पर क्षोभात्मक बल का प्रकट होना ही सृष्टि है। बल को वैदिक भाषा में 'सहस्' कहा है, 'अग्निः सहसा सूनुः' है।

यानी अग्नि बल से जन्म होता है। जब अग्नि रूपी शिशु का जन्म होगा,वह बल या घर्षण का परिणाम होगा। प्रत्यक्ष भौतिक आग भी अरणि मन्थन से जन्म लेता है। इस प्रकार वैदिक भाषा में इसे ही - 'तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यं' कहा है।

इस प्रकार हमने 'सैषा त्रयी विद्या तपति' इस महान् शतपथीय सिद्धान्त के आधार पर त्रयी विद्या का रहस्य प्रतिपादित किया है। विद्वान् पाठक इस लेख की गंभीरता को समझ कर आत्मसात् करेंगे कि अग्नि-वायु-आदित्य, वाक्-प्राण-मन, क्षर-अक्षर-अव्यय, पृथिवी- अन्तरिक्ष-द्यौ, असंज्ञ-अन्तःसंज्ञ-ससंज्ञ, विष्कंभ-केन्द्र-परिणात, ब्रह्मा-विष्णु-महेश, वैश्वानर -तैजस-प्राज्ञ, हृ-दृ-य, निद्रा-जागरण-प्रसुप्ति ये सब ऋक्-यजुः-साम लक्षणस्वरूप ही हैं। तथा वैज्ञानिक विवेचन से यह भी स्पष्ट हो गया यह त्रयी विद्या ही वेद चतुष्टयी है। चारों वेद ही त्रयी विद्या कहलाती है। अथर्व के बिना त्रयी विद्या का कोई अस्तित्व ही नहीं है।

ऋषि की कृपा से इस रहस्य के भीतर झाँकने का प्रयास कर पाया हूँ। इसलिए उस ऋषि को प्रणामांजलि प्रस्तुत करता हूँ। इति

जिन सज्जनों को यह पत्रिका प्राप्त हुई है वे तो अवश्य ही इसके वार्षिक/आजीवन (न्यूनतम) सदस्य तुरन्त बनने की कृपा करें, ऐसी प्रार्थना है।

आओ स्मरण करें

पंजाब केसरी लाला लाजपत राय

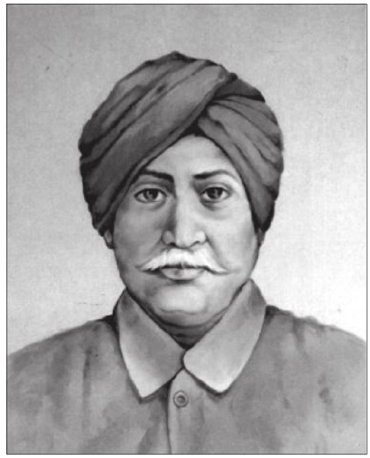

लाला लाजपत राय भारत माँ के ऐसे लाडले सपूत थे जिन्होंने अपना सारा जीवन देश व मानवता की सेवा के लिए जिया और अन्त में स्वतंत्रता संग्राम की बलिवेदी पर हँसते-हँसते १७ नवम्बर १९२८ को अपना जीवन पुष्प समर्पित कर दिया। लालाजी का जन्म २८ जनवरी १८६५ को पंजाब के मोंगा जिले में हुआ। आपके पिता का नाम श्री रामकिशन व माता श्री का नाम गुलाबदेवी जी था। पिता महर्षि दयानन्द की विचारधारा से प्रभावित थे। माँ धार्मिक, गृह-निपुण और बच्चों में संस्कार उड़ेलने हेतु सदैव तत्पर रहती थीं। लाला जी के अंदर जो उच्चतम नैतिक आदर्श थे, उनका सम्प्रेषण उनकी माँ के द्वारा ही हुआ और इस तथ्य को लालाजी ने स्वयं स्पष्ट किया।

भारत में अंग्रेजी-शासन के विरुद्ध जिन महापुरुषों ने अपने जीवन की आहुति दी उनमें लालाजी का नाम बड़े आदर व सम्मान के साथ अग्रिम पंक्ति में लिया जाता है। अपनी युवावस्था में गवर्नमेन्ट कॉलेज, लाहौर में जब वे पढ़ रहे थे तब उनका सम्पर्क लाला हंसराज, पंडित गुरुदत्त जैसे साथियों के साथ हुआ जो न केवल महर्षि दयानन्द की समग्र क्रान्ति की अवधारणा से ओतप्रोत थे वरन् जिन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य को जड़ मूल से उखाड़ने का संकल्प अपने मन में किया हुआ था। ऐसे साथियों से मिलकर लालाजी के परिवेश का निर्माण हुआ।

महर्षि दयानन्द और आर्य समाज उनके जीवन की केन्द्रीय धुरी थे। वे कहा करते थे महर्षि दयानन्द उनके धर्म पिता और आर्य समाज उनकी माता है।

लाला लाजपत राय ने डीएवी कॉलेज के कार्य को अत्यधिक तीव्रता प्रदान की और इस हेतु अपने स्वास्थ्य की चिन्ता किए बिना वे अहर्निश लगे रहे। हिसार में आपकी वकालात की अच्छी प्रेक्टिस रही, वे चाहते तो बहुत सारा धन कमा सकते थे। परन्तु उनके हृदय में तो स्वातंत्र्य प्रेम का सागर उत्ताल तरंगें मार रहा था। जब भाई अजीत सिंह जी की सभाओं को अंग्रेज अधिकारियों ने प्रतिबंधित करने का निश्चय किया उस समय लाला लाजपत राय जी ने भी उसका विरोध किया और जो दमन चक्र चला उसके फलस्वरूप आपने माण्डले में एकान्त कारावास का कष्ट भोगा। लालाजी को ३ मई १९०७ को रावलपिंडी से बन्दी बनाया गया व माण्डले जेल में रखा व ११ मई १९०७ को कारागार से मुक्त किया गया।

लालाजी हिसार नगरपालिका के सदस्य व सचिव चुने गये। १८९२ में वे लाहौर आ गए। लालाजी ने इंडियन नेशनल कांग्रेस की सदस्यता भी ग्रहण की। वे न नरम दल के थे न गरम दल के थे। परन्तु दोनों ही पक्ष उन्हें अपने साथ रखना चाहते थे। लाल बाल पाल, अर्थात् लाला लाजपत राय, बालगंगाधर तिलक व विपिनचन्द्रपाल ये त्रिमूर्ति के रूप में जाने जाते थे।

जिस समय अंग्रेजों ने बंगाल का विभाजन अपनी कूटनीति के तहत किया उस समय लालाजी ने उसका प्रबल विरोध किया। श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, विपिन चन्द्र पाल व अरविन्द घोष के साथ मिलकर उन्होंने स्वदेशी आन्दोलन चलाया।

लालाजी की सोच थी कि विदेशों में भारतवर्ष की वर्तमान दशा को स्पष्ट रूप से रखा जाकर ब्रिटिश दमनशाही का सच्चा व क्रूर चेहरा अवश्य दिखाया जाना चाहिए, इसलिए वे अप्रेल १९१४ में ब्रिटेन गये। इसी समय प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हो गया था तथा वे भारत न लौट सके। तदुपरांत वे अमरीका चले गए और वहाँ भारत के लिए समर्थन जुटाने का भरसक प्रयास किया। अमरीका में उन्होंने 'इंडियन होमलीग सोसायटी ऑफ अमेरिका' की स्थापना की और 'यंग इंडिया' नामक पुस्तक लिखकर

ब्रिटिश सरकार को उसका असली चेहरा दिखाया। इस पुस्तक पर भारत व ब्रिटेन में प्रतिबंध लगा दिया गया। लालाजी १९२० में प्रथम विश्व युद्ध के समाप्त होने के बाद भारत लौटे। जिस समय जनरल डायर ने जलियाँवाला बाग में खूनी खेल खेला। लाला लाजपत राय जी ने इसके खिलाफ बुलन्द आवाज उठाई व असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप उनको कई बार बन्दी बनाया गया। गांधी जी ने जब असहयोग आन्दोलन को स्थगित किया तो लालाजी उससे सहमत नहीं थे। १९२८ में ब्रिटिश सरकार ने संवैधानिक सुधार के लिए साइमन कमीशन को भारत भेजा। यह बड़े आश्चर्य का विषय था कि भारत में संवैधानिक सुधार के लिए भेजे गए कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था, इससे भारतीयों में काफी क्रोध था। साइमन कमीशन जब भारत आया तो उसे जगह-जगह विरोध प्रदर्शन का सामना करना पड़ा। लाला जी ने एक विशाल समूह का नेतृत्व करते हुए साइमन कमीशन का प्रबल विरोध किया। यह प्रदर्शन पूर्णतः शांतिपूर्ण था परन्तु सरकार ने बड़ी निर्दयता से इस जुलूस पर लाठी व डण्डे बरसाये। लालाजी को सिर पर बहुत गहरी चोट आई और १७ नवम्बर १९२८ को इस देशभक्त, माँ भारती के सपूत ने अंतिम सांस ली। लालाजी की मृत्यु ने भारतीय युवकों में प्रबल उत्तेजना का संचार किया फलस्वरूप भगतसिंह आदि ने साण्डर्स को गोली मारी। उनका कथन कि 'मेरे शरीर पर पड़ी एक-एक लाठी का निशान ब्रिटिश साम्राज्य के ताबूत में कील के समान होगा सच साबित हुआ।

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास के प्रकाशन

०१.	यज्ञ संदेश	- आचार्य ज्ञानेश्वरार्यः	प्रचारार्थ
०२.	महर्षि दयानन्द का उदयपुर (मेवाड़) प्रवास	- डॉ. भवानीलाल भारती	१०/-
०३.	दयानन्द दर्शन (महर्षिजी का सचित्र जीवन चरित्र)	- सं. अशोक आर्य	२५०/-
०४	दयानन्द दर्शन (महर्षिजी का सचित्र जीवन चरित्र) पेपर बैक	- सं. अशोक आर्य	१२५/-
०५.	सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत (पूर्वार्द्ध) सजिल्द पेपर बेक	- पं. जयगोपाल शर्मा	११०/-
०६.	सत्यार्थ प्रकाश कवितामृत (उत्तरार्द्ध) सजिल्द पेपर बेक	- पं. जयगोपाल शर्मा	१२०/-
०७.	सत्यार्थ दर्शन (प्रथम भाग)	- अशोक आर्य	२५/-
०८.	नवलखा महल एक परिचय (हिन्दी)	- अशोक आर्य	२०/-
०९.	नवलखा महल एक परिचय (अंग्रेजी)	- अशोक आर्य	२५/-
१०.	महर्षि दयानन्द 'जीवनदर्शन' वी.सी.डी.	- प्रस्तुतिः अशोक आर्य	४०/-
११.	ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका	- महर्षि दयानन्द सरस्वती	८०/-
१२.	सत्यार्थ सन्देश	- डॉ. सोमदेव शास्त्री	२२/-
१३.	शरीर के मरने पर	- आचार्य आर्य नरेश	समाप्त
१४.	सत्यार्थ दर्शन (द्वितीय भाग)	- अशोक आर्य	२५/-
१५.	दैनिक उपासना		५/-
१६.	तमसो मा ज्योतिर्गमय (सजिल्द)	- सं. अशोक आर्य	६०/-
१७.	तमसो मा ज्योतिर्गमय (पेपर बेक)	- सं. अशोक आर्य	४०/-
१८.	वैदिक संस्कृति : एक सरल परिचय	- अशोक आर्य	२५/-
१९.	सत्यार्थ दर्शन (तृतीय भाग)	- अशोक आर्य	२५/-
२०.	सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) डिलक्स	- सं. विद्वत् समिति	१६०/-
२१.	सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) सजिल्द	- सं. विद्वत् समिति	११०/-
२२.	सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) अजिल्द	- सं. विद्वत् समिति	१०५/-
२३.	सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) प्रचार	- सं. विद्वत् समिति	७५/-
२४.	सत्यार्थ प्रकाश निष्कलंक है		२०/-

किंवदन्तियों का रहस्य

– उपेन्द्रनाथ राय

किंवदन्तियाँ सामाजिक जीवन का अंग हैं। समाज में रहने वाला कोई भी व्यक्ति ऐसा कदाचित् ही मिलेगा जिसने कभी न कभी कोई न कोई किंवदन्ती न सुनी हो। किंवदन्तियों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। किंवदन्तियों के विषय राजा–महाराजा, साधु–सन्त, कवि, गायक, गुणीजन, विशेष ग्रन्थ, विशेष स्थल आदि हो सकते हैं। इनका जन्म पहले मौखिक रूप से होता है और सुनते–सुनाते ही इनका प्रचार–प्रसार होता है। कभी–कभी बाद में ये लिपिबद्ध हो जाती हैं। मौखिक होने से इनका स्वरूप स्थान–काल भेद से बदल भी जाता है। उदाहरणार्थ, जो बात एक व्यक्ति के लिए कभी कही गयी, वही दूसरे के साथ जुड़ जाती है। अथवा ऐसा भी हो सकता है कि व्यक्ति का नाम तो वही रहे पर उसका परिचय बदल जाये। प्रश्न यह है कि इन किंवदन्तियों का जन्म क्यों, कैसे होता है?

इसके उत्तर के लिए हमें मानव–मन को समझना होगा। मानव मन कौतुहली है,जिज्ञासु है। वह अज्ञात को ज्ञात करने की चेष्टा करता है, जो कुछ देखता–सुनता है, उसकी व्याख्या ढूँढ़ता है। उसकी कुछ इच्छाएँ भी होती हैं। वह कठिन को सरल, असंभव को संभव बनाना चाहता है। इसीलिए चमत्कारों के प्रति उसमें स्वाभाविक आकर्षण है। वह सृजनशील भी है। अपनी इच्छाओं को पूरी करने के लिए वह कभी कभी स्वप्नों की सृष्टि करता है, कभी जागृत अवस्था में तरह तरह की चीजों का निर्माण करता है। मानव मन की यह सृजनशीलता छोटे–छोटे बच्चों के घरोंदों से लेकर मूर्तियों, चित्रों, भवनों, कथाओं और काव्यों तक में प्रकट होती है। किवदन्तियाँ भी इसी सृजनशीलता के फल हैं। हर सृजन अपने सार में आनन्ददायक होता है। अतः कह सकते हैं कि किंवदन्तियाँ आनन्द–लाभ के लिए ही निर्मित होती हैं। फिर भी इनके साथ कुछ और भी मनोभाव जुड़े होते हैं जिनका विश्लेषण आवश्यक है।

अधिकांश किंवदन्तियों के मूल में महिमा–वर्द्धन की भावना होती है। देव–देवी के भक्त औरों को भी अपने साथ लेने के लिए उसकी पूजा के सुफल सुनाते हैं। इनका सारांश यही होता है कि पूजन–भजन से निर्धन धनी हो जाता है, जड़ बुद्धिमान हो जाता है, पापी के पाप कट जाते हैं, कुमारी कन्या अच्छा वर पाती है, मामले–मुकदमे में जीत होती है, बुरे ग्रहों का प्रकोप शान्त हो जाता है। इस आशय के कथानक ही लिपिबद्ध होकर महात्म्य ग्रन्थों में परिणत हुए हैं। आजकल इन किंवदन्तियों को सिनेमा के माध्यम से भी प्रचारित किया जा रहा है। अभी थोड़े दिन हुए सोलह शुक्रवार नाम के एक चलचित्र में भारत के एक विशेष अंचल में पूजित सन्तोषी माता को देश के कोने–कोने में पहुँचा दिया गया है। फलस्वरूप आजकल बंगाली परिवारों में भी कहीं–कहीं सन्तोषी माता का व्रत और पूजन देखा जा सकता है।

राजाओं, कवियों, गायकों, साधु–सन्तों और इस युग में राजनैतिक नेताओं के गौरव को बढ़ाने के लिए बहुत सी किंवदन्तियों का प्रचार हुआ है। राजाओं में गौरव बढ़ाने वाली बातें तीन समझी जाती थीं। एक तो यह कि राजा विजेता हो, शत्रुओं को युद्ध में पराजित करे। दूसरी यह कि उसके दरबार में बहुत से ज्ञानी–गुणी लोगों का समावेश हो। तीसरी यह है कि वह दाता हो। इसलिए जितने ऐतिहासिक या काल्पनिक राजाओं की बात जनसाधारण तक पहुँची, ये तीनों बातें उनके साथ जुड़ी रहीं। भोज और विक्रमादित्य इसके उदाहरण हैं। इन किंवदन्तियों का कुछ सुफल अवश्य हुआ। जहाँ बहुत से राजा भोग–विलास में डूबे रहे, वहाँ कुछ ने तो विद्वानों को आश्रय दिया, शिक्षा–प्रसार में रुचि दिखाई और दान–पुण्य भी किया। इन किंवदन्तियों का कुछ दुष्प्रभाव भी देखा गया। लोग यह समझने लगे कि जिस

अपने आराध्य को, अपनी श्रद्धा के केन्द्र को अलौकिक गुणों से मण्डित करने की लालसा किस प्रकार किंवदन्तियों को जन्म देती हैं, लेखक का रोचक चिन्तन पठनीय हैं। – सम्पादक

कवि, विद्वान् या गायक को राजाश्रय नहीं मिला वह उपेक्षणीय हो जायेगा। इसलिए सदय होकर जन-मानस ने ज्यों-त्यों उन्हें किसी शूद्रक, विक्रमादित्य, भोज या अकबर की राजसभा में स्थान अथवा उक्त राजा द्वारा सम्मान दिलाने का प्रयास किया। विक्रमादित्य के नवरत्नों की कथा इस प्रयास का ही मूर्तरूप है। मुगल युग के वैष्णवों में भी इस प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। इसलिए कुम्भनदास, सूरदास, गोविन्दस्वामी, मीराबाई आदि से ज्यों-त्यों अकबर की भेंट कराने और वार्तालाप कराने के लिए ये वैष्णव लालायित रहे हैं। दूसरी ओर योग्यता-अपनी विद्या-बुद्धि पर भरोसा न करने वाले कुछ बुद्धिजीवी आज भी राजनैतिक नेताओं के पीछे दौड़धूप कर रहे हैं। इस या उस नेता की जीवनी लिखने वाले या सत्तारूढ़ प्रधानमंत्री अथवा मुख्यमंत्री को शोध का विषय बनाने वाले कदाचित् पद-प्रतिष्ठा और अर्थ तो पा सकते हैं पर अक्षय कीर्ति तो निर्लोभी जन ही पाते हैं।

राजाओं की महिमा के ऊपर बनाये गये उपादानों के अतिरिक्त एक और उपादान भारत में,बल्कि एशिया भर में विशेष उल्लेखनीय समझा गया है वह है ऐश्वर्य और उसका ज्ञापक माना जाता है विशाल रनिवास। महाभारत से स्पष्ट है कि श्रीकृष्ण की एकमात्र पत्नी रुक्मिणी थी और उनका एकमात्र पुत्र प्रद्युम्न था। सपत्नीक कृष्ण ने हिमायल के पास बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन के साथ तप करके उस पुत्र को पाया था (सौप्तिक पर्व -१२/३०-३२) किन्तु पुराणों ने जब उनको राजाओं का भी राजा बनाया तो उनकी रानियों की संख्या १६ हजार और पुत्रों की संख्या १ करोड़ ८०० हो गई। जैन इस होड़ में पीछे रहने वाले नहीं थे। इसलिए उन्होंने कहा-चक्रवर्ती राजाओं की ऋतुओं में सुखकारक और सरूपवती बत्तीस हजार ऋतु कल्याणी स्त्रियाँ होती हैं। अन्य राजाओं की कन्याओं से चक्रवर्ती राजा जो विवाह करता है, उनकी संख्या भी बत्तीस हजार होती है। वे देवांगनाओं के समान रूपवती होती हैं। इस प्रकार कुल चौसठ हजार स्त्रियाँ होती हैं और इसकी दूनी अर्थात् एक लाख अट्ठाइस हजार रूपवती वारांगनाएँ होती हैं। इस प्रकार चक्रवर्ती के उपभोग के लिए उसके अन्तःपुर में कुल एक लाख बानवे हजार स्त्रियाँ रहती हैं।' (श्रीकाल-लोक-प्रकाश, सर्ग ३१,५४४-५४६)

इस प्रकार की किंवदन्तियों का दुष्प्रभाव यह पड़ा कि धनाढ्य लोगों के लिए बहुविवाह तथा स्वेच्छाचार की पूरी छूट हो गई, बल्कि वह आवश्यक हो गया। राजा-महाराजाओं, नवाबों-बादशाहों के लिए वर्षभर हेतु कम से कम ३६५ स्त्रियाँ होना निश्चित हो गया। राम अपवाद हैं क्योंकि सीता के सिवा और किसी नारी को उन्होंने नहीं अपनाया परन्तु उनके पिता दशरथ की रानियों की संख्या ३६५ बतायी जाती है।

साधु सन्तों की महिमा उनकी जटा और दाढ़ी के विस्तार पर निर्भर होती है, उनके सैंकड़ों वर्ष जीने, १२ से लेकर ६० वर्ष तक तपस्या करने और हजारों को शिष्य बनाने का प्रयोजन भी कम नहीं। यदि आप तीर्थस्थानों पर जायें तो ५०-६० की उम्र के साधु २००-३०० वर्ष उम्र बताते मिलेंगे। जबकि अधिकांश लोग निकम्मेपन के कारण गृहस्थ जीवन में असफल या विचलित होकर साधु बनते हैं। वे दावा कम उम्र में ही संन्यास लेने का करते हैं जैसे कम उम्र में संन्यास लेना बहुत बड़ा काम हो। इस तरह की विचारधारा का जन्म कब हुआ कहना कठिन है, पर है यह काफी पुराना। इस विचारधारा के प्रभाव से ही व्यास पुत्र शुकदेव के वास्तविक जीवनवृत्त पर भी लीपा पोती की गई है। शुकदेव ने विवाह किया था, उनके पाँच पुत्र और एक पुत्री भी थी यह वायु पुराण, विष्णुपुराण, देवी भागवत आदि से स्पष्ट है किन्तु श्रीमद्भागवत का कहना है कि बचपन में ही वे संन्यासी हो गये तथा आजन्म ब्रह्मचारी रहे।

गायकों की महिमा बढ़ाने के लिए इस तरह की कथाएँ प्रचलित हुई हैं कि अमुक का गाना सुनकर हिरन चले आते थे,दिये जल जाते थे या बादल उमड़ आते थे। वास्तव में किसी भी संगीतज्ञ के लिए यह कर पाना असंभव है। वैद्य की महिमा बढ़ाने के लिए यह कहा जाता है कि वह तो नाड़ी देखकर ही क्या रोग है,क्या खाया-पिया है इत्यादि सब जान लेता है। सत्य यह है कि चरक-सुश्रुत आदि की संहिताओं में नाड़ी विषयक विवेचन है ही नहीं और नाड़ी देखकर रोगी के खानपान के बारे में बता देना अटकलबाजी है। मन्त्र पढ़कर साँप को बुलाने और काटे गये स्थान से विष निकाल लेने को बाध्य करना, तार पाकर साँप के काटे हुए का विष उतार देना आदि प्रचार भी सोद्देश्य हैं। ज्योतिषियों की भविष्यवाणियों के बारे में बहुत-सी किंवदन्तियाँ मैंने पढ़ीं और सुनी हैं पर उन सबको अलीक पाया है। उदाहरण के लिए आपातस्थिति के बाद जब चुनावों की घोषणा हुई तो प्रायः सभी ज्योतिषियों ने घोषणा की कि इन्दिरा गाँधी की शानदार जीत होगी परन्तु उस बार

वे पराजित रहीं। फैजाबाद में मेरी भेंट एक तन्त्र साधक से हुई जिनके बारे में किंवदन्ती थी कि वे पूर्वजन्म की बातें बताते हैं। सचमुच वे बताते थे पर इस जन्म में उनका ज्ञान दयनीय था। फैजाबाद कैण्ट स्टेशन से उतरकर गन्तव्य मकान को ढूंढने में उन्हें डेढ़ घंटे लग गये जबकि वह मकान रकाबगंज चौराहे के पास आसानी से दिखने योग्य स्थिति में है।

विशिष्ठ व्यक्तियों की महिमा बढ़ाने के लिए किंवदन्तियाँ पहले भी प्रचारित होती थीं, इस समय भी होती हैं। शंकराचार्य के बारे में प्रसिद्धि है कि आठ साल की उम्र में उन्होंने चारों वेद पढ़ लिए थे, बारह की उम्र में सभी शास्त्रों के ज्ञाता बन गये और १६ की उम्र में उन्होंने ब्रह्मसूत्र, गीता और उपनिषद् भाष्य रचे। इस युग में प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू की मृत्यु के बाद एक कहानी सुनने को मिली। वह यह कि मोतीलाल नेहरू सन्तान न होने से चिन्तित थे। एक दिन वे पंडित मदनमोहन मालवीय और पंडित बालकृष्ण भट्ट्ट के साथ नगर के बाहर घूमने गये थे। वहाँ उन्होंने वृक्ष पर रहने वाले एक योगी को देखा। फिर मालवीय जी और भट्ट्टजी के परामर्श से योगी को प्रसन्न किया और अपनी इच्छा बताई। योगी ने उनकी हस्तरेखा देखकर कहा- 'बेटा तुम्हारे भाग्य में पुत्र सन्तान नहीं, आगे, हरि-इच्छा।' कहते हैं दूसरे दिन उस योगी को मृत पाया गया। इसके बाद यथासमय जवाहर लाल का जन्म हुआ। अर्थात् जवाहर लाल उस योगी के अवतार थे। इस कथा का प्रचार तब हुआ जब इसका प्रतिवाद करने के लिए मालवीय जी, भट्ट्टजी और मोतीलाल जी ही नहीं जवाहर लाल भी इस दुनिया में नहीं थे। इसके पीछे जो भावना थी वह सहज ही अनुमेय है। नेताओं को देवता के आसन पर बैठाने के लिए ऐसी कितनी ही किंवदन्तियाँ बनी हैं, बन रही हैं।

किसी जाति, स्थान या प्रदेश की महिमा बढ़ाने के लिए किंवदन्तियों का जन्म होता है। कालिदास को बंगाल, विदर्भ, मिथिला और उत्तराखण्ड से जोड़ने वाली कथाएँ इसके उदाहरण हैं। गोस्वामी तुलसीदास को कोशी, हस्तिनापुर, राजापुर, सोरों आदि से जोड़ने वाली किंवदन्तियाँ भी ऐसी ही हैं। अबुलफजल के साक्ष्य के अनुसार तानसेन की अन्त्येष्टि के लिए लोग गाते बजाते आगरा के निकट ही कहीं गये थे पर इससे ग्वालियर की एक कब्र को उनसे जोड़ने में रुकावट नहीं आयी। अयोध्या में राम का जन्म स्थान ही नहीं, राम के दातौन करने का स्थान और सीता का रसोईघर दिखा देने वाले जानकार भी आपको मिल जायेंगे। कहीं कोई कुटी, जलाशय या गुहा हो तो प्रायः उसका राम सीता या पाण्डवों से सम्बन्ध जोड़ लिया जाता है। राम के और पाण्डवों के बनवास के स्थल बता देने से अपने अंचल का महत्व तो बढ़ता ही हैं, पूजा-पाठ, चढ़ाने आदि की व्यवस्था भी हो जाती है। रामायण से सम्बन्धित स्थल उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, आन्ध्र और कर्नाटक-तमिलनाडु तक फैले हैं। एक इलाके की किंवदन्ती कभी कभी दूसरे इलाके की किंवदन्ती से टकरा भी जाती है। यथा, हम सुनते आये थे कि शूर्पणखा की नाक पुणे के पास नासिक में काटली गई थी। अतएव पंचवटी भी उधर ही होनी चाहिए पर वर्षों पूर्व 'सरस्वती' में प्रकाशित एक लेख से पता चला है कि कर्नाटक में भी पंचवटी बतायी जाती है। महाभारत सम्बन्धी स्थल जम्मू से लेकर उत्तर प्रदेश तक तथा दक्षिण में महाराष्ट्र तक बताये जाते हैं। तेज बहने वाली चिनाब नदी एक स्थान पर मन्दगति से निःशब्द बहती है तो इसका कारण यह बताया जाता है कि अज्ञातवास के समय तपस्या में विघ्न डालने से भीम ने ५००० वर्ष पूर्व उसे फटकारा था, तब से बेचारी चुपचाप बह रही है। नदी के पास एक किला है जो राजा विराट का किला बताया जाता है। तसल्ली यह जानकर हुई कि जम्मू से कुछ दूर रियासी की पहाड़ियों में स्थित गुहा में राम या पाण्डव नहीं रहे बल्कि उसे शंकर भगवान ने अपने त्रिशूल से बनाया था और भस्मासुर के भय से सपरिवार उसमें छिपे थे। वहाँ भी पूजा पाठ, चढ़ावा सब कुछ भक्तों के समावेश के साथ शुरू हो गया है। जाति की महिमा तो इसी से स्पष्ट है कि भारत में एक बड़े भाग में चुनाव जाति के नाम पर लड़े और जीते जाते हैं तथा सरकारी-बेसरकारी नौकरियों में नियुक्ति और पदोन्नति का संक्षिप्त पथ जाति ही निकाल देती है। स्वजाति का गौरव बढ़ाने के लिए हिन्दी के एक स्वनामधन्य इतिहासकार इतने उतावले थे कि किसी के ब्राह्मण होने का जरा सा प्रमाण मिलते ही उसे झटपट कान्यकुब्ज ब्राह्मण बना देते थे। फिर वह युग आया जब यथासंभव हर कवि को सरयूपारीय सिद्ध करने की धूम मच गई।

किंवदन्तियों के मूल में अपने सम्प्रदाय के गौरव को बढ़ाने की प्रवृत्ति भी रहती है। किसी समय श्रीनाथ जी के विग्रह को गोवर्द्धन से हटाकर सतघरा (मथुरा) ले जाना

पड़ा था। चैतन्य-चरितामृत में इसका उपलक्ष्य 'म्लेच्छभय' बताया गया है। तथापि दावा किया गया है कि बुढ़ापे में असमर्थ रूप गोस्वामी दर्शन चाहते थे, उनकी इच्छा पूरी करने के लिए श्रीनाथ जी मथुरा पधारे और एक मास रहे। पुष्टिमार्ग के ग्रन्थ इसका कारण विट्ठलनाथजी का घर देखना मात्र बताते हैं। दोनों सम्प्रदायों ने इस प्रकार अपने विशिष्ठ पुरुष को भगवान का विशेष कृपापात्र बताया है। सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाने के लिए यह भी आवश्यक होता है कि उसका आचार्य अनायास सारी विद्या सीख ले और अपने शिक्षा-गुरु को भी अचम्भे में डाल दे,१२-१४ वर्ष की उम्र में उसके अनेक शिष्य या सेवक हो जावें और बड़े-बड़े विद्वानों को शास्त्रार्थ में पराजित कर वह दिग्विजयी बने और बड़े-बड़े राजा महाराजा उसके उत्तराधिकारी के या सम्प्रदाय के लोगों के दर्शन करके अपने को धन्य समझें। कभी-कभी अपने सम्प्रदाय का गौरव बढ़ाने के लिए दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को भगवद्सेवा का अनुपयुक्त या विद्या-बुद्धि अथवा भक्ति में घटाकर दिखाया जाता है।

इसका तात्पर्य यह नहीं कि सम्प्रदाय के लोग सर्वदा अपने विशिष्ट व्यक्तियों का निर्मल रूप ही प्रस्तुत करते हैं। बड़ा कठोर और अप्रिय सत्य यह है कि धर्म जिस राग द्वेष आदि दुर्गुणों के त्याग का उपदेश देता है,साम्प्रदायिक बुद्धि प्रायः उसका शिकार हो जाती है। इसीलिए शंकराचार्य शास्त्रार्थ में बौद्धों और जैनों को पराजित करके ही सन्तुष्ट नहीं रहते, उनके परम भक्तों के लिए 'शंकर दिग्विजय' जैसे ग्रन्थों के अनुसार राजा सुधन्वा के शस्त्र-बल से उनका संहार भी करते हैं। धर्मशास्त्रों के अनुसार आग लगाना आततायी का काम है पर श्रीनाथ मन्दिर से बंगाली पुजारियों को निकालने के लिए बहाना ढूंढ़ने वाले कृष्णदास अधिकारी उनकी झोपड़ियों में आग लगवा देते हैं और उनको मारते-पीटते हैं। वार्ताकार इसे 'चौरासी वैष्णवन की वार्ता' में उनकी कीर्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं और इस युग के जाने-माने पुष्टिमार्गी इसे नीतिज्ञता बताते हैं।

किंवदन्तियाँ लिखित साक्ष्य की परवाह नहीं करतीं, यह एक साधारण नियम है। सम्प्रदाय के गौरव को बढ़ाने के लिए प्रस्तुत किंवदन्तियाँ भी इसका अपवाद नहीं। वल्लभाचार्य की एक मुख्य कृति 'तत्त्ववार्थदीपनिबन्ध' में कहा गया है कि भगवान ने स्वयं सन्देह दूर करने के लिए बताया था-

एकं शास्त्रं देवकीपुत्रगीतं एको देवो देवकीपुत्र एव।

मन्त्रोप्येक स्तस्य नामानि यानि कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा।।

(देवकीपुत्र का गीत श्रीमद्भागवत पुराण ही एकमात्र शास्त्र है,देव भी एकमात्र देवकीपुत्र ही सर्वोपरि हैं,उनके नाम ही परम मन्त्र हैं और उनकी सेवा ही एकमात्र करणीय है।) ..... क्रमशः

- अचिन्त्य भवन
बाबूपाड़ा (पार्क के निकट)
अलीपुरदुआर-७३६१२१ (पंडित बंगाल)

अनेक विशेषताओं से युक्त १८८४ के मूल सत्यार्थ प्रकाश के सर्वाधिक नजदीक, तत्कालीन शैली का संरक्षण, मुद्रण अशुद्धियों से रहित

सत्यार्थ प्रकाश (मानक संस्करण) **अवश्य खरीदें।**

प्राप्ति स्थल : श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर - ३१३००१

सभी देशवासियों को ६३वें गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य में

हार्दिक शुभकामना एवं बधाई।

श्रीमद् दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश न्यास

नवलखा महल, गुलाबबाग, उदयपुर-३१३००१

दूरभाष : ०२९४-२४१७६९४

संरक्षक सदस्य - सत्यार्थ सन्देश

श्री रतिराम शर्मा, सिलीगुड़ी

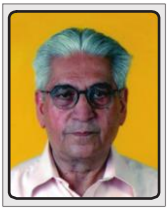
श्री भवानीदास आर्य, उदयपुर

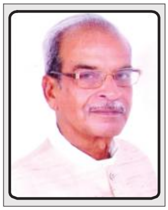
श्री आनन्द कुमार आर्य, कोलकाता

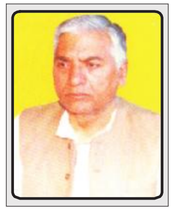
श्री दीनदयाल गुप्त, कोलकाता

श्री बी.एल. अग्रवाल, जयपुर

श्री सुरेशचन्द्र अग्रवाल, अहमदाबाद

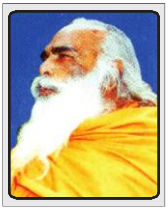
स्वामी (डॉ.) ओम् आनन्द सरस्वती, चित्तौड़गढ़

श्री चन्दूलाल अग्रवाल, अहमदाबाद

श्री मिठाईलाल सिंह, मुम्बई

श्री आर. डी. गुप्ता, गाजियाबाद

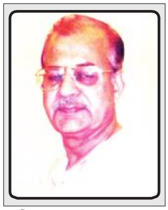
कै. देवरत्न आर्य, मुम्बई

श्री नारायणलाल मित्तल, उदयपुर

सत्यार्थ प्रकाश-मानक संस्करण की द्वितीय आवृत्ति शीघ्र प्रकाशित होगी

मान्य आर्यजन! आप सभी के विश्वास व स्नेह के चलते सत्यार्थ प्रकाश न्यास, उदयपुर द्वारा प्रकाशित सत्यार्थ प्रकाश की दस हजार प्रतियाँ मात्र ६ मास में ही समाप्त हो गयीं। सत्यार्थ प्रकाश-मानक संस्करण की द्वितीय आवृत्ति शीघ्र आपके समक्ष होगी। वर्तनी सम्बन्धी समस्त मुद्रण- भूलों को सुधार दिया गया है। आशा है पूर्व की भाँति आप अपना प्यार देंगे। सत्यार्थ प्रकाश युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द का अमर ग्रंथ है। इसे कम से कम मूल्य में पाठकों तक पहुँचाना हमारी अभिलाषा है।

अतएव पूर्व की भांति जो सज्जन १०० या अधिक प्रति आरक्षित कराएंगे उन्हें लागत (५८ रु.) से भी कम मूल्य मात्र ३५०० रु. में यह प्राप्त हो सकेगा। आप यह राशि न्यास के नाम चैक/ड्राफ्ट द्वारा भेजें अथवा एकाउन्ट सं. ३१०१०२०१००४१५१८ यूनियन बैंक ऑफ इण्डिया, मुख्य शाखा उदयपुर में जमा करा दें और हमें सूचित करें।

मानक संस्करण की कतिपय विशेषताएँ-

१. धर्मार्य सभा के प्रधान आचार्य विशुद्धानन्द जी मिश्र के नेतृत्व में दस विद्वानों की समिति द्वारा तैयार।
२. पाठभेद की समस्या का सदैव के लिए निराकरण। मुद्रण भूलों का निराकरण कर परिशिष्ट में आधार की जानकारी भी।
३. मानक संस्करण का प्रत्येक पृष्ठ उसी शब्द से प्रारम्भ व समाप्त है जैसा कि मूल सत्यार्थ प्रकाश (१८८४) में है।
४. मूल सत्यार्थ प्रकाश (१८८४) सदैव के लिए पाठक के समक्ष उपस्थित रहेगा।
५. सुन्दर गेटअप "५.६X६.०" पृष्ठ ६५०, वजन ६०० ग्राम, पेपर बैक।

घाटे की पूर्ति पूर्ववत् दानदाताओं के सहयोग से ही संभव होगी। आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि सत्यार्थ प्रकाश प्रेमी इस कार्य में आगे आवेंगे।

कृपया इस अंक के बारे में अपने सुझाव अवश्य लिखें -
'सत्यार्थ-सन्देश'
को घर-घर पहुँचाने के लिए स्वयं सदस्य बनें और बनावें।

न्यास को दिया हुआ "दान"
आयकर अधिनियम की
धारा 80जी
के अन्तर्गत कर-मुक्त है।

भाई प्रदीप आर्य

को नगर विकास प्रन्यास, अलवर का अध्यक्ष मनोनीत होने पर भूरिशः शुभकामनाएं

- सभी न्यासीगण

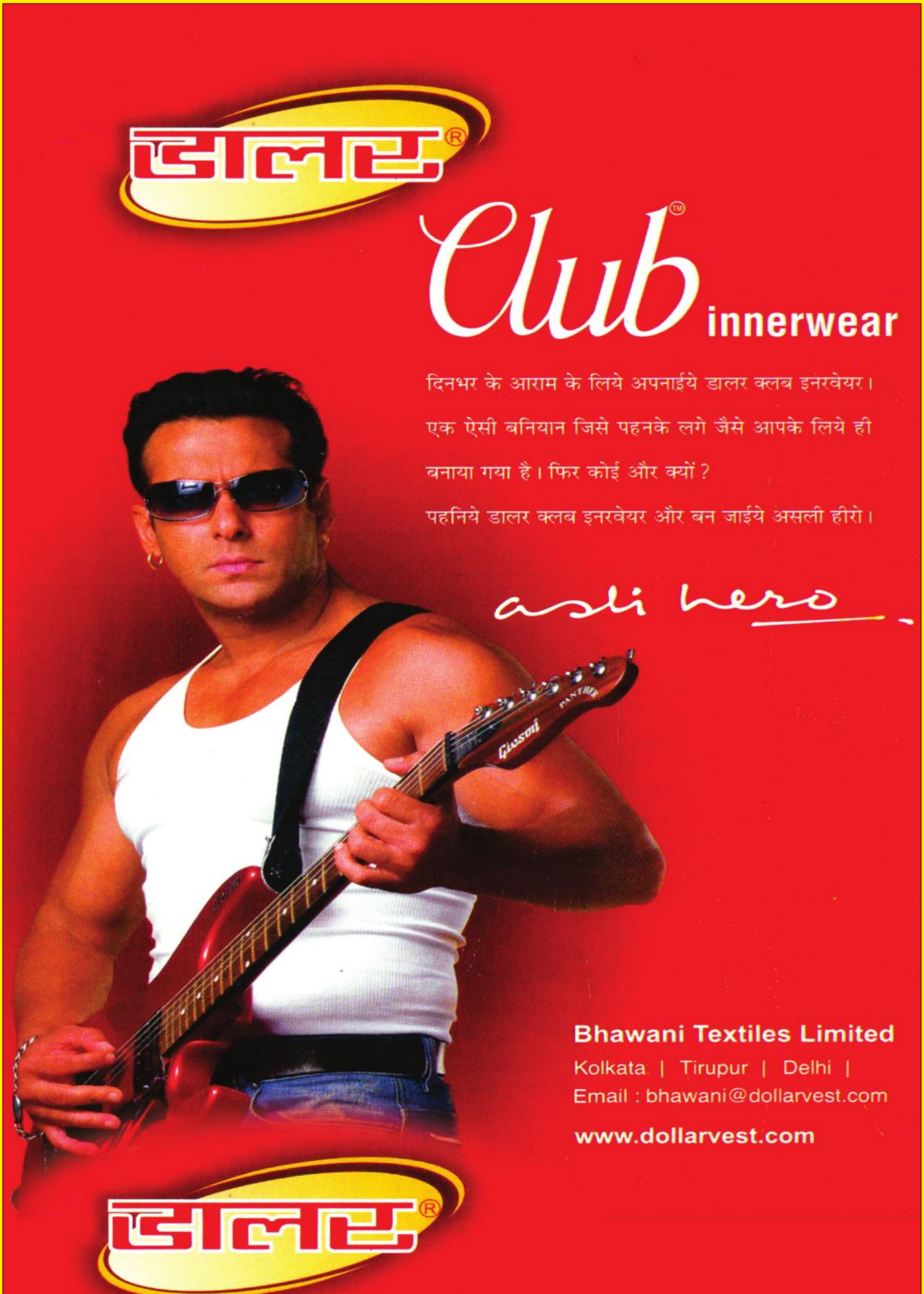

डालर®
Club™ innerwear
दिनभर के आराम के लिये अपनाईये डालर क्लब इनरवेयर।
एक ऐसी बनियान जिसे पहनके लगे जैसे आपके लिये ही
बनाया गया है। फिर कोई और क्यों?
पहनिये डालर क्लब इनरवेयर और बन जाईये असली हीरो।
asli hero
Bhawani Textiles Limited
Kolkata | Tirupur | Delhi |
Email : bhawani@dollarvest.com
www.dollarvest.com
डालर®

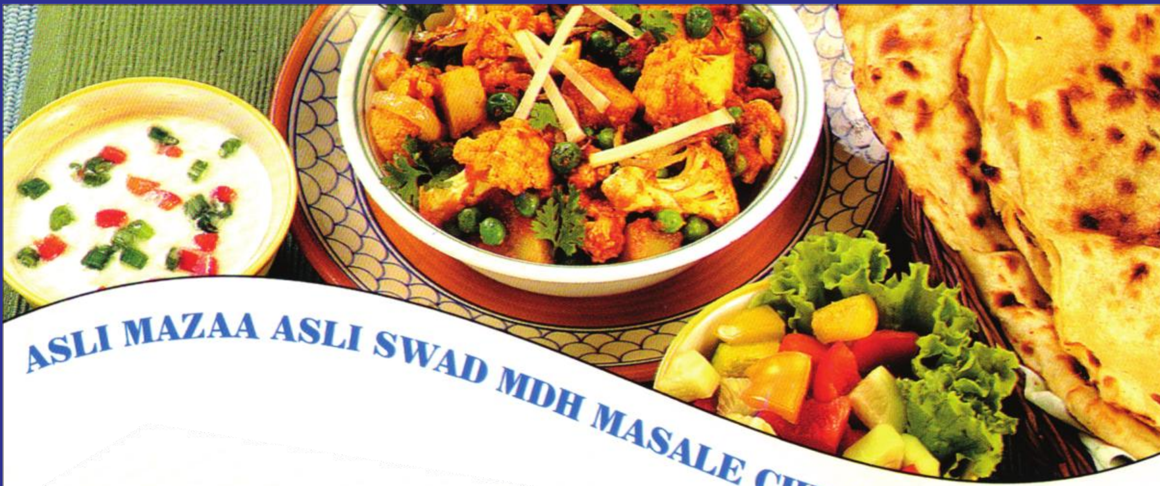

ASLI MAZAA ASLI SWAD MDH MASALE CHHAYE RAHE SADA

MDH

Earnest attachment with families, care for health, quality and purity, confidence of crores of people... this is the history of MDH spices who have in the past 87 years passed every test to come out winners not only in India but everywhere in the world. No wonder, MDH spices are being exported to health and quality conscious countries in USA, Canada, U.K., Switzerland, Germany, Middle-east, Far east.

MAHASHIAN DI HATTI LTD.

Regd. Office : MDH House, 9/44 Kirti Nagar, New Delhi-15, Ph. : 25939609, 25937987 Fax : 011-25927710 E-mail : mdhltd@vsnl.net